वितान

भाग 1

कक्षा 11 के लिए हिंदी (आधार) की पूरक पाठ्यपुस्तक

11067

हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड, भिवानी
Board of School Education Haryana, Bhiwani

मूल संस्करण :
© राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधांन और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली

अभिगृहित :
© हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड, भिवानी

संस्करण : **2020**

संख्या : **8,000 प्रतियाँ**

मुल्य : **₹35/-**

सर्वाधिकार सुरक्षित

- प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना, इस प्रकाशन के किसी भी भाग को छापना तथा इलैक्ट्रॉनिकी, मशीनी, फोटो प्रतिलिपि, रिकॉर्डिग अथवा किसी अन्य विधि से पुनः प्रयोग पद्धति द्वारा उसका संग्रहण और प्रसारण वर्जित है।

- इस पुस्तक की बिक्री इस शर्त के साथ की गई है कि प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना, यह पुस्तक अपने मूल आवरण अथवा जिल्द के अलावा किसी अन्य प्रकार से व्यापार द्वारा उधारी पर, पुनविक्रय या किराये पर न दी जायेगी और न बेची जायेगी।

- इस प्रकाशन का सही मूल्य इस पृष्ठ पर मुद्रित है। रबड़ की मुहर अथवा चिपकाई गई पर्ची (स्टीकर) या किसी अन्य विधि द्वारा अंकित कोई भी संशोधित मूल्य गलत है तथा मान्य नहीं होगा।

आभार प्रदर्शन

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली ने इस पुस्तक को छापने तथा हरियाणा के विद्यालयों में इसे पाठ्य–पुस्तक के रूप में पढ़ाने की अनुमति हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड, भिवानी को प्रदान करने की कृपा की है।

हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड, भिवानी इसके लिए उनका हृदय से आभार प्रकट करता है।

सचिव

टैक्स्ट 80 जी॰एस॰एम॰ डी एस जी पेपर मिल और कवर 170 जी॰एस॰एम॰ विशाल पेपर मिल के कागज पर मुद्रित।

सचिव, हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड, भिवानी द्वारा प्रकाशित एवम् एस जी प्रिण्ट पैक्स प्रा॰ लि॰, नोएडा–201301, उ॰प्र॰ द्वारा मुद्रित।

आमुख

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005 सुझाती है कि बच्चों के स्कूली जीवन को बाहर के जीवन से जोड़ा जाना चाहिए। यह सिद्धांत किताबी ज्ञान की उस विरासत के विपरीत है जिसके प्रभाववश हमारी व्यवस्था आज तक स्कूल और घर के बीच अंतराल बनाए हुए है। नयी राष्ट्रीय पाठ्यचर्या पर आधारित पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकें इस बुनियादी विचार पर अमल करने का प्रयास हैं। इस प्रयास में हर विषय को एक मज़बूत दीवार से घेर देने और जानकारी को रटा देने की प्रवृत्ति का विरोध शामिल है। आशा है कि ये कदम हमें राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में वर्णित बाल–केंद्रित व्यवस्था की दिशा में काफ़ी दूर तक ले जाएँगे।

इस प्रयत्न की सफलता अब इस बात पर निर्भर है कि स्कूलों के प्राचार्य और अध्यापक बच्चों को कल्पनाशील गतिविधियों और सवालों की मदद से सीखने और सीखने के दौरान अपने अनुभव पर विचार करने का अवसर देते हैं। हमें यह मानना होगा कि यदि जगह, समय और आज़ादी दी जाए तो बच्चे बड़ों द्वारा सौंपी गई सूचना–सामग्री से जुड़कर और जूझकर नए ज्ञान का सृजन करते हैं। शिक्षा के विविध साधनों एवं स्रोतों की अनदेखी किए जाने का प्रमुख कारण पाठ्यपुस्तक को परीक्षा का एकमात्र आधार बनाने की प्रवृत्ति है। सर्जना और पहल को विकसित करने के लिए ज़रूरी है कि हम बच्चों को सीखने की प्रक्रिया में पूरा भागीदार मानें और बनाएँ, उन्हें ज्ञान की निर्धारित खुराक का ग्राहक मानना छोड़ दें।

ये उद्देश्य स्कूल की दैनिक ज़िंदगी और कार्यशैली में काफ़ी फेरबदल की माँग करते हैं। दैनिक समय–सारणी में लचीलापन उतना ही ज़रूरी है जितनी वार्षिक कैलेंडर के अमल में चुस्ती, जिससे शिक्षण के लिए नियत दिनों की संख्या हकीकत बन सके। शिक्षण और मूल्यांकन की विधियाँ भी इस बात को तय करेंगी कि यह पाठ्यपुस्तक स्कूल में बच्चों के जीवन को मानसिक दबाव तथा बोरियत

की जगह खुशी का अनुभव बनाने में कितनी प्रभावी सिद्ध होती है। बोझ की समस्या से निपटने के लिए पाठ्यक्रम निर्माताओं ने विभिन्न चरणों में ज्ञान का पुनर्निर्धारण करते समय बच्चों के मनोविज्ञान एवं अध्यापन के लिए उपलब्ध समय का ध्यान रखने की पहले से अधिक सचेत कोशिश की है। इस कोशिश को और गहराने के यत्न में यह पाठ्यपुस्तक सोच-विचार और विस्मय, छोटे समूहों में बातचीत एवं बहस, और हाथ से की जाने वाली गतिविधियों को प्राथमिकता देती है।

एन.सी.ई.आर.टी. इस पुस्तक की रचना के लिए बनाई गई पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति के परिश्रम के लिए कृतज्ञता व्यक्त करती है। परिषद् भाषा समिति के अध्यक्ष प्रो. नामवर सिंह और इस पुस्तक के मुख्य सलाहकार प्रो. पुरुषोत्तम अग्रवाल की विशेष आभारी है। इस पाठ्यपुस्तक के निर्माण में कई शिक्षकों ने योगदान दिया; इस योगदान को संभव बनाने के लिए हम उनके प्राचार्यों के आभारी हैं। हम उन सभी संस्थानों और संगठनों के प्रति कृतज्ञ हैं जिन्होंने अपने संसाधनों, सामग्री तथा सहयोगियों की मदद लेने में हमें उदारतापूर्वक सहयोग दिया। हम माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा प्रोफ़ेसर मृणाल मीरी एवं प्रोफ़ेसर जी. पी. देशपांडे की अध्यक्षता में गठित निगरानी समिति (मॉनीटरिंग कमेटी)द्वारा नामित अशोक वाजपेयी और सत्यप्रकाश मिश्र को अपना मूल्यवान समय और सहयोग देने के लिए धन्यवाद देते हैं। व्यवस्थागत सुधारों और अपने प्रकाशनों में निरंतर निखार लाने के प्रति समर्पित एन.सी.ई.आर.टी. टिप्पणियों एवं सुझावों का स्वागत करेगी जिनसे भावी संशोधनों में मदद ली जा सके।

निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान
और प्रशिक्षण परिषद्

नयी दिल्ली
20 दिसंबर 2005

यह पुस्तक

आज की तेज़ी से बदलती दुनिया में बच्चों को कुछ ऐसा भी पढ़ने को मिलना चाहिए जो उन्हें पाठ्यपुस्तक की एकरसता और बोझ से बाहर निकाले। वे उन्मुक्त संसार में पींगें बढ़ा सकें। उस पढ़ाई में वह सब हो जो उन्हें ज्ञान की विशाल दुनिया तक ले जाने में मददगार साबित हो। इसलिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूप रेखा–2005 पाठ्यपुस्तक के साथ–साथ बच्चों की पूरक पाठ्यसामग्री पर विशेष बल देती है। वितान भाग 1 (कक्षा 11, आधार पाठ्यक्रम) की परिकल्पना इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर की गई है। पूरक पाठ्यपुस्तक की सोच के पीछे यह भी उद्देश्य रहा है कि पाठ्यपुस्तक के दायरे में न समा सकने वाली सामग्री को बच्चों के सामने रुचिकर ढंग से प्रस्तुत किया जाए।

इस किताब में कुल चार रचनाएँ संग्रहीत हैं। चारों रचनाएँ मिलकर एक नया संसार रचती हैं। इस नयी रचावट को कथ्य और शिल्प दोनों स्तरों पर देखा जा सकता है। चयन में इसका खयाल रहा है कि विद्यार्थी छोटी रचनाओं के साथ–साथ एक लंबी रचना (आलो–आँधारि) का आनंद लें और उन्हें लंबी रचनाओं को पढ़ने का चस्का लगे।

पहली रचना है *गायिकाओं में बेजोड़ : लता मंगेशकर।* संगीत की दुनिया की वह आवाज़ जिसे सब जानते हैं। जिसे सब पहचानते हैं। पर इस ओर कम लोगों का ध्यान गया होगा कि बच्चों की अभिरुचि के विकास में उस आवाज़ का क्या योगदान है? दिनोदिन सुरीले होते किशोर और युवा तथा उनके थिरकते पाँव का राज़ क्या है? लता यानी सुगम संगीत या फ़िल्मी संगीत का सुरीला इतिहास। एक ऐसा सुर जिसने एक शास्त्रीय गायक को कलम उठाने पर विवश कर दिया। मूल हिंदी में लिखी गई कुमार गंधर्व की यह रचना भाषा की सांगीतिक धरोहर है। यह शास्त्रीय संगीत और फ़िल्मी संगीत को एक धरातल पर ला रखने का साहस है। यह ऐसी परख है जो न शास्त्रीय है न सुगम। बस संगीत है। गानपन की पहचान है।

जहाँ एक ओर संगीत ज़िंदगी को लय देता है, ताज़गी देता है, हर मोड़ पर आनेवाले उतार-चढ़ाव से जूझने की ताकत देता है, मन को उन्मुक्त करता है; वहीं दूसरी ओर पर्यावरण इस उन्मुक्त मन को खुला आकाश देता है, साँस भरने को। जिजीविषा को मकसद देता है, संघर्ष करने को। इस किताब की दूसरी रचना है *राजस्थान की रजत बूँदें*। यह रचना एक राज्य विशेष राजस्थान की जल समस्या का समाधान मात्र नहीं है। यह ज़मीन की अतल गहराइयों में जीवन की पहचान है। यह रचना धीरे-धीरे भाषा की एक ऐसी दुनिया में ले जाती है जो कविता नहीं है, कहानी नहीं है, पर पानी की हर आहट की कलात्मक अभिव्यक्ति है। भाषा में संगीतमय गद्य की पहचान है। इस पहचान से विद्यार्थियों का ताल मिले, यह वितान की उपलब्धि होगी।

इनके साथ-साथ एक ऐसी दुनिया जो हमारे साथ है, पड़ोस में है, लेकिन अनदेखी है। इस दुनिया में प्रवेश कराने की हिमाकत है *आलो-आँधारि* नामक आत्म कथांश की प्रस्तुति। यह कहानी है उन लाखों, करोड़ों झुग्गियों की जिसमें झाँकना भी भद्रता के तकाज़े से बाहर है। यह चुनौती है साहित्य के उन पहरुओं को जो साहित्य को साँचे में देखने के आदी हैं, जो समाज के कोने-अँतरे पनपते साहित्य को हाशिये पर रखते हैं और भाषा एवं साहित्य को भी एक खास वर्ग की जागीर मानते हैं।

बेबी इस कथा की नायिका भी है और लेखिका भी। मात्र तेरह वर्ष की होते-होते सातवीं की पढ़ाई अधूरी छोड़ वह एक अधेड़ से ब्याह दी जाती है और जीवन के सबसे संवेदनशील उम्र में तीन बच्चों की माँ बन जाती है। वही बेबी पति की ज़्यादतियों को न बर्दाश्त कर शुरू करती है एक ऐसी यात्रा जो न तो उसने पहाड़ों पर की, न समुद्रतट पर और न ही स्टडीरूम में बैठकर। एक ऐसी आपबीती जो मूलतः बांग्ला में लिखी गई लेकिन पहली ऐसी रचना जो छपकर बाज़ार में आने से पहले ही अनूदित रूप में हिंदी में आई। अनुवादक प्रबोध कुमार ने *एक ज़बान*

को दूसरी ज़बान दी पर रूह को छुआ नहीं। एक बोली की भावना दूसरी बोली में बोली, रोई, मुसकुराई (आलो आँधारि की भूमिका से)। अनुवाद के नाम पर मात्र अंग्रेज़ी से होनेवाले अनुवादों के बीच भारतीय भाषाओं में रची-बसी हिंदी का एक अनुकरणीय नमूना है *आलो-आँधारि।*

चौथी रचना भारतीय कलाएँ शीर्षक से संग्रहित हैं। इसमें हिंदी के विद्यार्थियों को भारतीय कलाओं से रू-ब-रू कराने की कोशिश की गयी है। इस पाठ द्वारा यह भी कोशिश है कि कलाओं और भाषाओं के बीच अंतर्संबंध की समझ बन सके।

किताब के अभ्यासों में यह प्रयास रहा है कि पाठों के बहाने विद्यार्थी की अपनी दुनिया बने। संगीत, पर्यावरण या एक घरेलू नौकरानी के ज़रिये वे अपने समय, समाज और संस्कृति की दुनिया में बेरोक-टोक घूम सकें। तभी सही मायने में यह पुस्तक वितान (फैलाव) बन सकेगी। उम्मीद है, अपने मकसद में कामयाब होगी। सुझावों का स्वागत रहेगा।

भारत का संविधान

उद्देशिका

हम, भारत के लोग, भारत को एक [1][**संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न समाजवादी पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य**] बनाने के लिए, तथा उसके समस्त नागरिकों को :

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक **न्याय,**

विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म

और उपासना की **स्वतंत्रता,**

प्रतिष्ठा और अवसर की **समता**

प्राप्त कराने के लिए,

तथा उन **सब में**

व्यक्ति की गरिमा और [2][**राष्ट्र की एकता**

और अखंडता] सुनिश्चित करने वाली **बंधुता**

बढ़ाने के लिए

दृढ़संकल्प होकर **अपनी इस संविधान सभा में** आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई. को **एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।**

---

1. संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 2 द्वारा (3.1.1977 से) ''प्रभुत्व-संपन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य'' के स्थान पर प्रतिस्थापित।
2. संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 2 द्वारा (3.1.1977 से) ''राष्ट्र की एकता'' के स्थान पर प्रतिस्थापित।

पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति

अध्यक्ष, भाषा सलाहकार समिति

नामवर सिंह, *पूर्व अध्यक्ष,* भारतीय भाषा केंद्र, जे.एन.यू., नयी दिल्ली

मुख्य सलाहकार

पुरुषोत्तम अग्रवाल, *पूर्व प्रोफ़ेसर,* भारतीय भाषा केंद्र, जे.एन.यू., नयी दिल्ली

मुख्य समन्वयक

रामजन्म शर्मा, *पूर्व प्रोफ़ेसर* एवं *अध्यक्ष,* भाषा शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली

सदस्य-समन्वयक

संध्या सिंह, *प्रोफ़ेसर,* भाषा शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली

आभार

इस पुस्तक के निर्माण में अकादमिक सहयोग के लिए हम निम्नलिखित के आभारी हैं:

उषा शर्मा, *एसोशिएट प्रोफ़ेसर*, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली; नीलकंठ कुमार, *पी.जी.टी.*, प्रतिभा विकास विद्यालय, सेक्टर 10, द्वारका, नयी दिल्ली।

हम निदेशक द्वारा निर्मित समीक्षा समिति की अध्यक्ष सरोज बाला यादव, *प्रोफ़ेसर* एवं *डीन* (एकेडमिक), एन.सी.ई.आर.टी. के प्रति आभार व्यक्त करते हैं।

हम इस पुस्तक के पाठ 'भारतीय कलाएँ' की रचना के लिए संध्या सिंह, *प्रोफ़ेसर* एवं *अध्यक्ष*, भाषा शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी. एवं उसमें उपयोग किए गए चित्रों के लिए assam.gov.in; mizoram.gov.in; ccrtindia.gov.in; संस्कृति अर्धवार्षिक अंक 2007 भारत सरकार, संस्कृति मंत्रालय शास्त्री भवन, नयी दिल्ली के आभारी हैं।

पुस्तक के निर्माण में तकनीकी सहयोग के लिए परिषद्, परशराम कौशिक, *प्रभारी*, कंप्यूटर स्टेशन (भाषा विभाग); प्रमोद कुमार तिवारी और समीना उस्मानी, *कॉपी एडीटर*; कमलेश कुमारी, इन्दुमति सरकार और भगवती अम्माल, *प्रूफ़ रीडर*; कमल कुमार, विजय कुमार और जयप्रकाश राय, *डी.टी.पी. ऑपरेटर* एवं बेबी हालदार के चित्र के लिए श्रीधरम की आभारी है।

विषय-सूची

	आमुख		*iii*
	यह पुस्तक		*v*
1.	भारतीय गायिकाओं में बेजोड़ : लता मंगेशकर	– *कुमार गंधर्व*	1
2.	राजस्थान की रजत बूँदें	– *अनुपम मिश्र*	9
3.	आलो-आँधारि*	– *बेबी हालदार*	21
4.	भारतीय कलाएँ		59
5.	लेखकों के बारे में		71

* *अँधेरे का उजाला*

भारत का संविधान

भाग 4क

नागरिकों के मूल कर्तव्य

अनुच्छेद 51 क

मूल कर्तव्य – भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह –

(क) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे;

(ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे;

(ग) भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण बनाए रखे;

(घ) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे;

(ङ) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभावों से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो महिलाओं के सम्मान के विरुद्ध हों;

(च) हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्त्व समझे और उसका परिरक्षण करे;

(छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखे;

(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे;

(झ) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे;

(ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत् प्रयास करे, जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊँचाइयों को छू सके; और

(ट) यदि माता-पिता या संरक्षक है, छह वर्ष से चौदह वर्ष तक की आयु वाले अपने, यथास्थिति, बालक या प्रतिपाल्य को शिक्षा के अवसर प्रदान करे।

11067CH01

भारतीय गायिकाओं में बेजोड़— लता मंगेशकर

– कुमार गंधर्व

बरसों पहले की बात है। मैं बीमार था। उस बीमारी में एक दिन मैंने सहज ही रेडियो लगाया और अचानक एक अद्वितीय स्वर मेरे कानों में पड़ा। स्वर सुनते ही मैंने अनुभव किया कि यह स्वर कुछ विशेष है, रोज़ का नहीं। यह स्वर सीधे मेरे कलेजे से जा भिड़ा। मैं तो हैरान हो गया। मुझे समझ में नहीं आ रहा था कि यह स्वर किसका है। मैं तन्मयता से सुनता ही रहा। गाना समाप्त होते ही गायिका का नाम घोषित किया गया– लता मंगेशकर। नाम सुनते ही मैं चकित हो गया। मन-ही-मन एक संगति पाने का भी अनुभव हुआ। सुप्रसिद्ध गायक दीनानाथ मंगेशकर की अजब गायकी एक दूसरा स्वरूप लिए उन्हीं की बेटी की कोमल आवाज़ में सुनने का अनुभव हुआ।

मुझे लगता है 'बरसात' के भी पहले के किसी चित्रपट का वह कोई गाना था। तब से लता निरंतर गाती चली आ रही है और मैं भी उसका गाना सुनता आ रहा हूँ। लता के पहले प्रसिद्ध गायिका नूरजहाँ का चित्रपट संगीत में अपना ज़माना था। परंतु उसी क्षेत्र में बाद में आई हुई लता उससे कहीं आगे निकल गई। कला के क्षेत्र में ऐसे चमत्कार कभी-कभी दीख पड़ते हैं। जैसे प्रसिद्ध सितारिये विलायत खाँ अपने सितारवादक पिता की तुलना में बहुत ही आगे चले गए।

मेरा स्पष्ट मत है कि भारतीय गायिकाओं में लता के जोड़ की गायिका हुई ही नहीं। लता के कारण चित्रपट संगीत को विलक्षण लोकप्रियता प्राप्त हुई है, यही नहीं लोगों का शास्त्रीय संगीत की ओर देखने का दृष्टिकोण भी एकदम बदला है। छोटी बात कहूँगा। पहले भी घर-घर छोटे बच्चे गाया करते थे पर उस गाने में और आजकल घरों में सुनाई देने वाले बच्चों के गाने में बड़ा अंतर हो गया है। आजकल के नन्हे- मुन्ने भी स्वर में गुनगुनाते हैं। क्या लता इस जादू का कारण नहीं है? कोकिला का स्वर निरंतर कानों में पड़ने लगे तो कोई भी सुनने वाला उसका अनुकरण करने का प्रयत्न करेगा। ये स्वाभाविक ही है। चित्रपट संगीत के कारण सुंदर स्वर मालिकाएँ[1] लोगों के कानों पर पड़ रही हैं। संगीत के विविध प्रकारों से उनका परिचय हो रहा है। उनका स्वर-ज्ञान बढ़ रहा है। सुरीलापन क्या है, इसकी समझ भी उन्हें होती जा रही है। तरह-तरह की लय के भी प्रकार उन्हें सुनाई पड़ने लगे हैं और आकारयुक्त लय के साथ उनकी जान-पहचान होती जा रही है। साधारण प्रकार के लोगों को भी उसकी सूक्ष्मता समझ में आने लगी है। इन सबका श्रेय लता को ही है। इस प्रकार उसने नयी पीढ़ी के संगीत को संस्कारित किया है और सामान्य मनुष्य में संगीत विषयक अभिरुचि पैदा करने में बड़ा हाथ बँटाया है। संगीत की लोकप्रियता, उसका प्रसार और अभिरुचि के विकास का श्रेय लता को ही देना पड़ेगा।

1. स्वरों के क्रमबद्ध समूह। स्वर मालिका में बोल (शब्द) नहीं होते।

सामान्य श्रोता को अगर आज लता की ध्वनिमुद्रिका[1] और शास्त्रीय गायकी[2] की ध्वनिमुद्रिका सुनाई जाए तो वह लता की ध्वनिमुद्रिका ही पसंद करेगा। गाना कौन से राग में गाया गया और ताल कौन-सा था, यह शास्त्रीय ब्योरा इस आदमी को सहसा मालूम नहीं रहता। उसे इससे कोई मतलब नहीं कि राग मालकोस[3] था और ताल त्रिताल[4]। उसे तो चाहिए वह मिठास, जो उसे मस्त कर दे, जिसका वह अनुभव कर सके और यह स्वाभाविक ही है। क्योंकि जिस प्रकार मनुष्यता हो तो वह मनुष्य है, वैसे ही 'गानपन'[5] हो तो वह संगीत है। और लता का कोई भी गाना लीजिए तो उसमें शत-प्रतिशत यह 'गानपन' मौजूद मिलेगा।

लता की लोकप्रियता का मुख्य मर्म यह 'गानपन' ही है। लता के गाने की एक और विशेषता है, उसके स्वरों की निर्मलता। उसके पहले की पार्श्व गायिका नूरजहाँ भी एक अच्छी गायिका थी, इसमें संदेह नहीं तथापि उसके गाने में एक मादक उत्तान दीखता था। लता के स्वरों में कोमलता और मुग्धता है। ऐसा दीखता है कि लता का जीवन की ओर देखने का जो दृष्टिकोण है वही उसके गायन की निर्मलता में झलक रहा है। हाँ, संगीत दिग्दर्शकों ने उसके स्वर की इस निर्मलता का जितना उपयोग कर लेना चाहिए था, उतना नहीं किया। मैं स्वयं संगीत दिग्दर्शक होता तो लता को बहुत जटिल काम देता, ऐसा कहे बिना रहा नहीं जाता।

लता के गाने की एक और विशेषता है, उसका नादमय उच्चार। उसके गीत के किन्हीं दो शब्दों का अंतर स्वरों के आलाप द्वारा बड़ी सुंदर रीति से भरा रहता है और ऐसा प्रतीत होता है कि वे दोनों शब्द विलीन होते-होते एक दूसरे में मिल जाते हैं। यह

1. *स्वरलिपि*
2. *जिसमें गायन को कुछ निर्धारित नियमों के अंदर ही गाया-बजाया जाता है। खयाल, ध्रुपद, धमार आदि शास्त्रीय गायकी के अंतर्गत आते हैं।*
3. *भैरवी थाट का राग, जिसमें रे और प वर्जित हैं। इसमें सारे स्वर कोमल लगते हैं। यह गंभीर प्रकृति का लोकप्रिय राग है।*
4. *यह सोलह मात्राओं का ताल है। इसमें चार-चार मात्राओं के चार विभाग होते हैं।*
5. *गाने का ऐसा अंदाज़ जो एक आम आदमी को भी भावविभोर कर दे।*

बात पैदा करना बड़ा कठिन है, परंतु लता के साथ यह बात अत्यंत सहज और स्वाभाविक हो बैठी है।

ऐसा माना जाता है कि लता के गाने में करुण रस विशेष प्रभावशाली रीति से व्यक्त होता है, पर मुझे खुद यह बात नहीं पटती। मेरा अपना मत है कि लता ने करुण रस के साथ उतना न्याय नहीं किया है। बजाए इसके, मुग्ध शृंगार की अभिव्यक्ति करने वाले मध्य या द्रुतलय[1] के गाने लता ने बड़ी उत्कटता से गाए हैं। मेरी दृष्टि से उसके गायन में एक और कमी है; तथापि यह कहना कठिन होगा कि इसमें लता का दोष कितना है और संगीत दिग्दर्शकों का दोष कितना। लता का गाना सामान्यतः ऊँची पट्टी[2] में रहता है। गाने में संगीत दिग्दर्शक उसे अधिकाधिक ऊँची पट्टी में गवाते हैं और उसे अकारण ही चिलवाते हैं।

एक प्रश्न उपस्थित किया जाता है कि शास्त्रीय संगीत में लता का स्थान कौन-सा है। मेरे मत से यह प्रश्न खुद ही प्रयोजनहीन है। उसका कारण यह है कि शास्त्रीय संगीत और चित्रपट संगीत में तुलना हो ही नहीं सकती। जहाँ गंभीरता शास्त्रीय संगीत का स्थायीभाव है वहीं जलदलय[3] और चपलता चित्रपट संगीत का मुख्य गुणधर्म है। चित्रपट संगीत का ताल प्राथमिक अवस्था का ताल होता है, जबकि शास्त्रीय संगीत में ताल अपने परिष्कृत रूप में पाया जाता है। चित्रपट संगीत में आधे तालों का उपयोग किया जाता है। उसकी लयकारी बिलकुल अलग होती है, आसान होती है। यहाँ गीत और आघात को ज़्यादा महत्व दिया जाता है। सुलभता और लोच[4] को अग्र स्थान दिया जाता है; तथापि चित्रपट संगीत गाने वाले को शास्त्रीय संगीत की उत्तम जानकारी होना आवश्यक है और वह लता के पास निःसंशय है। तीन-साढ़े तीन मिनट के गाए हुए

1. *लय तीन प्रकार की होती है– i. विलंबितलय (धीमी) ii. मध्यलय (बीच की) iii. द्रुतलय (तेज़) मध्यलय से दुगुनी और विलंबितलय से चौगुनी तेज़ लय द्रुतलय कहलाती है।*
2. *ऊँचे (तारसप्तक के) स्वरों का प्रयोग*
3. *द्रुत लय (तेज़)*
4. *स्वरों का बारीक मनोरंजक प्रयोग*

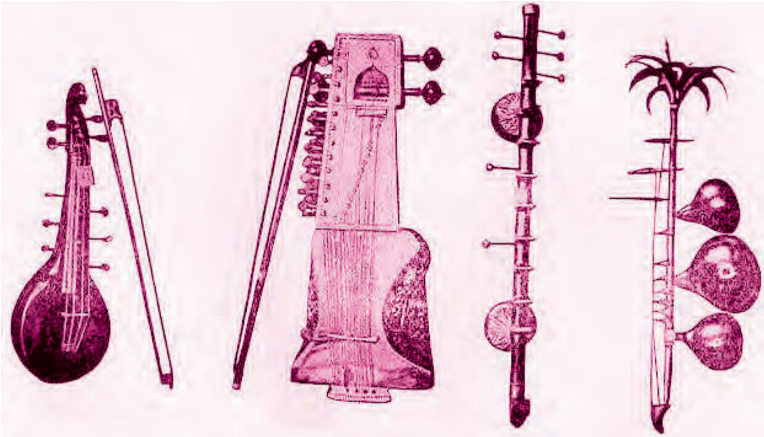

प्राचीन वाद्ययंत्र

चित्रपट के किसी गाने का और एकाध खानदानी शास्त्रीय गायक की तीन–साढ़े तीन घंटे की महफ़िल, इन दोनों का कलात्मक और आनंदात्मक मूल्य एक ही है, ऐसा मैं मानता हूँ। किसी उत्तम लेखक का कोई विस्तृत लेख जीवन के रहस्य का विशद् रूप में वर्णन करता है तो वही रहस्य छोटे से सुभाषित का या नन्ही–सी कहावत में सुंदरता और परिपूर्णता से प्रकट हुआ भी दृष्टिगोचर होता है। उसी प्रकार तीन घंटों की रंगदार महफ़िल का सारा रस लता की तीन मिनट की ध्वनिमुद्रिका में आस्वादित किया जा सकता है। उसका एक–एक गाना एक संपूर्ण कलाकृति होता है। स्वर, लय, शब्दार्थ का वहाँ त्रिवेणी संगम होता है और महफ़िल की बेहोशी उसमें समाई रहती है। वैसे देखा जाए तो शास्त्रीय संगीत क्या और चित्रपट संगीत क्या, अंत में रसिक को आनंद देने की सामर्थ्य किस गाने में कितना है, इस पर उसका महत्व ठहराना उचित है। मैं तो कहूँगा कि शास्त्रीय संगीत भी रंजक न हो, तो बिलकुल ही नीरस ठहरेगा। अनाकर्षक प्रतीत होगा और उसमें कुछ कमी–सी प्रतीत होगी। गाने में जो गानपन प्राप्त होता है, वह केवल शास्त्रीय बैठक के पक्केपन की वजह से ताल सुर के निर्दोष ज्ञान के कारण नहीं। गाने की सारी मिठास, सारी ताकत उसकी रंजकता

पर मुख्यत: अवलंबित रहती है और रंजकता का मर्म रसिक वर्ग के समक्ष कैसे प्रस्तुत किया जाए, किस रीति से उसकी बैठक बिठाई जाए और श्रोताओं से कैसे सुसंवाद साधा जाए, इसमें समाविष्ट है। किसी मनुष्य का अस्थिपंजर और एक प्रतिभाशाली कलाकार द्वारा उसी मनुष्य का तैलचित्र[1], इन दोनों में जो अंतर होगा वही गायन के शास्त्रीय ज्ञान और उसकी स्वरों द्वारा की गई सुसंगत अभिव्यक्ति में होगा।

संगीत के क्षेत्र में लता का स्थान अव्वल दरजे के खानदानी गायक के समान ही मानना पड़ेगा। क्या लता तीन घंटों की महफ़िल जमा सकती है, ऐसा संशय व्यक्त करने वालों से मुझे भी एक प्रश्न पूछना है, क्या कोई पहली श्रेणी का गायक तीन मिनट की अवधि में चित्रपट का कोई गाना उसकी इतनी कुशलता और रसोत्कटता से गा सकेगा? नहीं, यही उस प्रश्न का उत्तर उन्हें देना पड़ेगा? खानदानी गवैयों का ऐसा भी दावा है कि चित्रपट संगीत के कारण लोगों की अभिरुचि बिगड़ गई है। चित्रपट संगीत ने लोगों के 'कान बिगाड़ दिए' ऐसा आरोप लगाया जाता है। पर मैं समझता हूँ कि चित्रपट संगीत ने लोगों के कान खराब नहीं किए हैं, उलटे सुधार दिए हैं। ये विचार पहले ही व्यक्त किए हैं और उनकी पुनरूक्ति नहीं करूँगा।

सच बात तो यह है कि हमारे शास्त्रीय गायक बड़ी आत्मसंतुष्ट वृत्ति के हैं। संगीत के क्षेत्र में उन्होंने अपनी हुकुमशाही स्थापित कर रखी है। शास्त्र-शुद्धता के कर्मकांड को उन्होंने आवश्यकता से अधिक महत्व दे रखा है। मगर चित्रपट संगीत द्वारा लोगों की अभिजात्य संगीत से जान-पहचान होने लगी है। उनकी चिकित्सक और चौकस वृत्ति अब बढ़ती जा रही है। केवल शास्त्र-शुद्ध और नीरस गाना उन्हें नहीं चाहिए, उन्हें तो सुरीला और भावपूर्ण गाना चाहिए। और यह क्रांति चित्रपट संगीत ही लाया है। चित्रपट संगीत समाज की संगीत विषयक अभिरुचि में प्रभावशाली मोड़ लाया है। चित्रपट संगीत की लचकदारी उसका एक और सामर्थ्य है, ऐसा मुझे लगता है। उस संगीत की मान्यताएँ, मर्यादाएँ, झंझटें सब कुछ निराली हैं। चित्रपट संगीत का

1. *जिस चित्र में तैलीय रंगों का प्रयोग किया जाता है।*

तंत्र ही अलग है। यहाँ नवनिर्मिति की बहुत गुंजाइश है। जैसा शास्त्रीय रागदारी का चित्रपट संगीत दिग्दर्शकों ने उपयोग किया, उसी प्रकार राजस्थानी, पंजाबी, बंगाली, प्रदेश के लोकगीतों के भंडार को भी उन्होंने खूब लूटा है, यह हमारे ध्यान में रहना चाहिए। धूप का कौतुक करने वाले पंजाबी लोकगीत, रूक्ष और निर्जल राजस्थान में पर्जन्य[1] की याद दिलाने वाले गीत पहाड़ों की घाटियों, खोरों में प्रतिध्वनित होने वाले पहाड़ी गीत, ऋतुचक्र समझाने वाले और खेती के विविध कामों का हिसाब लेने वाले कृषिगीत और ब्रजभूमि में समाविष्ट सहज मधुर गीतों का अतिशय मार्मिक व रसानुकूल उपयोग चित्रपट क्षेत्र के प्रभावी संगीत दिग्दर्शकों ने किया है और आगे भी करते रहेंगे। थोड़े में कहूँ तो संगीत का क्षेत्र ही विस्तीर्ण है। वहाँ अब तक अलक्षित, असंशोधित और अदृष्टिपूर्व ऐसा खूब बड़ा प्रांत है तथापि बड़े जोश से इसकी खोज और उपयोग चित्रपट के लोग करते चले आ रहे हैं। फलस्वरूप चित्रपट संगीत दिनोंदिन अधिकाधिक विकसित होता जा रहा है।

ऐसे इस चित्रपट संगीत क्षेत्र की लता अनभिषिक्त[2] सम्राज्ञी है। और भी कई पार्श्व गायक–गायिकाएँ हैं, पर लता की लोकप्रियता इन सभी से कहीं अधिक है। उसकी लोकप्रियता के शिखर का स्थान अचल है। बीते अनेक वर्षों से वह गाती आ रही है और फिर भी उसकी लोकप्रियता अबाधित है। लगभग आधी शताब्दी तक जन–मन पर सतत प्रभुत्व रखना आसान नहीं है। ज़्यादा क्या कहूँ, एक राग भी हमेशा टिका नहीं रहता। भारत के कोने–कोने में लता का गाना जा पहुँचे, यही नहीं परदेस में भी उसका गाना सुनकर लोग पागल हो उठें, यह क्या चमत्कार नहीं है? और यह चमत्कार हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं।

ऐसा कलाकार शताब्दियों में शायद एक ही पैदा होता है। ऐसा कलाकार आज हम सभी के बीच है, उसे अपनी आँखों के सामने घूमता–फिरता देख पा रहे हैं। कितना बड़ा है हमारा भाग्य!

---

1. बादल, *2. बेताज*

अभ्यास

1. लेखक ने पाठ में ***गानपन*** का उल्लेख किया है। पाठ के संदर्भ में स्पष्ट करते हुए बताएँ कि आपके विचार में इसे प्राप्त करने के लिए किस प्रकार के अभ्यास की आवश्यकता है?
2. लेखक ने लता की गायकी की किन विशेषताओं को उजागर किया है? आपको लता की गायकी में कौन-सी विशेषताएँ नज़र आती हैं? उदाहरण सहित बताइए।
3. ***लता ने करुण रस के गानों के साथ न्याय नहीं किया है, जबकि शृंगारपरक गाने वे बड़ी उत्कटता से गाती हैं***– इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं?
4. ***संगीत का क्षेत्र ही विस्तीर्ण है। वहाँ अब तक अलक्षित, असंशोधित और अदृष्टिपूर्व ऐसा खूब बड़ा प्रांत है तथापि बड़े जोश से इसकी खोज और उपयोग चित्रपट के लोग करते चले आ रहे हैं***– इस कथन को वर्तमान फ़िल्मी संगीत के संदर्भ में स्पष्ट कीजिए।
5. ***चित्रपट संगीत ने लोगों के कान बिगाड़ दिए***– अकसर यह आरोप लगाया जाता रहा है। इस संदर्भ में कुमार गंधर्व की राय और अपनी राय लिखें।
6. शास्त्रीय एवं चित्रपट दोनों तरह के संगीतों के महत्व का आधार क्या होना चाहिए? कुमार गंधर्व की इस संबंध में क्या राय है? स्वयं आप क्या सोचते हैं?

कुछ करने और सोचने के लिए

1. पाठ में किए गए अंतरों के अलावा संगीत शिक्षक से चित्रपट संगीत एवं शास्त्रीय संगीत का अंतर पता करें। इन अंतरों को सूचीबद्ध करें।
2. कुमार गंधर्व ने लिखा है– ***चित्रपट संगीत गाने वाले को शास्त्रीय संगीत की उत्तम जानकारी होना आवश्यक है?*** क्या शास्त्रीय गायकों को भी चित्रपट संगीत से कुछ सीखना चाहिए? कक्षा में विचार-विमर्श करें।

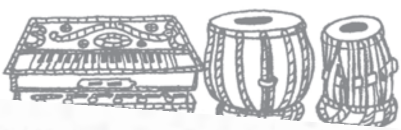

11067CH02

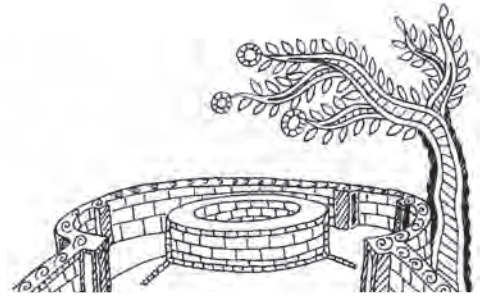

राजस्थान की रजत बूँदें

– *अनुपम मिश्र*

पसीने में तरबतर चेलवांजी कुंई के भीतर काम कर रहे हैं। कोई तीस-पैंतीस हाथ गहरी खुदाई हो चुकी है। अब भीतर गरमी बढ़ती ही जाएगी। कुंई का व्यास, घेरा बहुत ही संकरा है। उखरूँ[1] बैठे चेलवांजी की पीठ और छाती से एक-एक हाथ की दूरी पर मिट्टी है। इतनी संकरी जगह में खोदने का काम कुल्हाड़ी या फावड़े से नहीं हो सकता। खुदाई यहाँ बसौली से की जा रही है। बसौली छोटी डंडी का छोटे फावड़े जैसा औज़ार होता है। नुकीला फल लोहे का और हत्था लकड़ी का।

कुंई की गहराई में चल रहे मेहनती काम पर वहाँ की गरमी का असर पड़ेगा। गरमी कम करने के लिए ऊपर ज़मीन पर खड़े लोग बीच-बीच में मुट्ठी भर रेत बहुत ज़ोर के साथ नीचे फेंकते हैं। इससे ऊपर की ताज़ी हवा नीचे फिकाती है और गहराई में जमा दमघोंटू गरम हवा ऊपर लौटती है। इतने ऊपर से फेंकी जा रही रेत के कण नीचे काम कर रहे चेलवांजी के सिर पर लग सकते हैं इसलिए वे अपने सिर पर कांसे, पीतल या अन्य किसी धातु का एक बर्तन टोप की तरह पहने हुए

1. उकड़ूँ बैठना, पंजे के बल घुटने मोड़ कर बैठना।

हैं। नीचे थोड़ी खुदाई हो जाने के बाद चेलवांजी के पंजों के आसपास मलबा जमा हो गया है। ऊपर रस्सी से एक छोटा-सा डोल या बाल्टी उतारी जाती है। मिट्टी उसमें भर दी जाती है। पूरी सावधानी के साथ ऊपर खींचते समय भी बाल्टी में से कुछ रेत, कंकड़-पत्थर नीचे गिर सकते हैं। टोप इनसे भी चेलवांजी का सिर बचाएगा।

चेलवांजी यानी चेजारो, कुंई की खुदाई और एक विशेष तरह की चिनाई करने वाले दक्षतम लोग। यह काम चेजा कहलाता है। चेजारो जिस कुंई को बना रहे हैं, वह भी कोई साधारण ढाँचा नहीं है। कुंई यानी बहुत ही छोटा-सा कुआँ। कुआँ पुंलिंग है, कुंई स्त्रीलिंग। यह छोटी भी केवल व्यास में ही है। गहराई तो इस कुंई की कहीं से कम नहीं। राजस्थान में अलग-अलग स्थानों पर एक विशेष कारण से कुंइयों की गहराई कुछ कम-ज़्यादा होती है।

कुंई एक और अर्थ में कुएँ से बिलकुल अलग है। कुआँ भूजल को पाने के लिए बनता है पर कुंई भूजल से ठीक वैसे नहीं जुड़ती जैसे कुआँ जुड़ता है। कुंई वर्षा के जल को बड़े विचित्र ढंग से समेटती है– तब भी जब वर्षा ही नहीं होती! यानी कुंई में न तो सतह पर बहने वाला पानी है, न भूजल है। यह तो 'नेति-नेति' जैसा कुछ पेचीदा मामला है।

मरुभूमि में रेत का विस्तार और गहराई अथाह है। यहाँ वर्षा अधिक मात्रा में भी हो तो उसे भूमि में समा जाने में देर नहीं लगती। पर कहीं-कहीं मरुभूमि में रेत की सतह के नीचे प्रायः दस-पंद्रह हाथ से

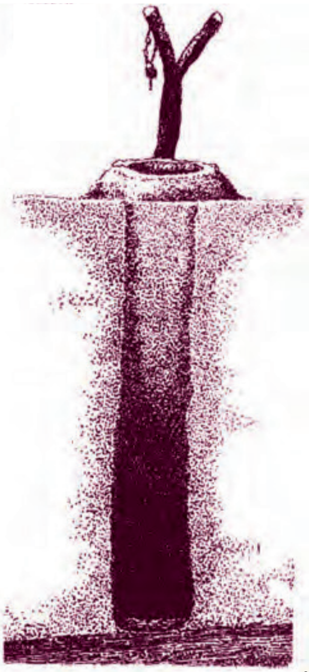

प्रकृति की उदारता पर खड़ी कुंई

पचास-साठ हाथ नीचे खड़िया पत्थर की एक पट्टी चलती है। यह पट्टी जहाँ भी है, काफ़ी लंबी-चौड़ी है पर रेत के नीचे दबी रहने के कारण ऊपर से दिखती नहीं है।

ऐसे क्षेत्रों में बड़े कुएँ खोदते समय मिट्टी में हो रहे परिवर्तन से खड़िया पट्टी का पता चल जाता है। बड़े कुओं में पानी तो डेढ़ सौ-दो सौ हाथ पर निकल ही आता है पर वह प्रायः खारा होता है। इसलिए पीने के काम में नहीं आ सकता। बस तब इन क्षेत्रों में कुंइयाँ बनाई जाती हैं। पट्टी खोजने में पीढ़ियों का अनुभव भी काम आता है। बरसात का पानी किसी क्षेत्र में एकदम 'बैठे' नहीं तो पता चल जाता है कि रेत के नीचे ऐसी पट्टी चल रही है।

यह पट्टी वर्षा के जल को गहरे खारे भूजल तक जाकर मिलने से रोकती है। ऐसी स्थिति में उस बड़े क्षेत्र में बरसा पानी भूमि की रेतीली सतह और नीचे चल रही पथरीली पट्टी के बीच अटक कर नमी की तरह फैल जाता है। तेज़ पड़ने वाली गरमी में इस नमी की भाप बनकर उड़ जाने की आशंका उठ सकती है। पर ऐसे क्षेत्रों में प्रकृति की एक और अनोखी उदारता काम करती है।

रेत के कण बहुत ही बारीक होते हैं। वे अन्यत्र मिलने वाली मिट्टी के कणों की तरह एक दूसरे से चिपकते नहीं। जहाँ लगाव है, वहाँ अलगाव भी होता है। जिस मिट्टी के कण परस्पर चिपकते हैं, वे अपनी जगह भी छोड़ते हैं और इसलिए वहाँ कुछ स्थान खाली छूट जाता है। जैसे दोमट या काली मिट्टी के क्षेत्र में गुजरात, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, बिहार आदि में वर्षा बंद होने के बाद धूप निकलने पर मिट्टी के कण चिपकने लगते हैं और धरती में, खेत और आँगन में दरारें पड़ जाती हैं।

धरती की संचित नमी इन दरारों से गरमी पड़ते ही वाष्प बनकर वापस वातावरण में लौटने लगती है।

पर यहाँ बिखरे रहने में ही संगठन है। मरुभूमि में रेत के कण समान रूप से बिखरे रहते हैं। यहाँ परस्पर लगाव नहीं, इसलिए अलगाव भी नहीं होता। पानी गिरने पर कण थोड़े भारी हो जाते हैं पर अपनी जगह नहीं छोड़ते। इसलिए मरुभूमि में धरती पर दरारें नहीं पड़तीं। भीतर समाया वर्षा का जल भीतर ही बना रहता है। एक तरफ़ थोड़े नीचे चल रही पट्टी इसकी रखवाली करती है तो दूसरी तरफ़ ऊपर रेत के असंख्य कणों का कड़ा पहरा बैठा रहता है।

खारे पानी के सागर में अमृत जैसा मीठा पानी

इस हिस्से में बरसी बूँद-बूँद रेत में समा कर नमी में बदल जाती है। अब यहाँ कुंई बन जाए तो उसका पेट, उसकी खाली जगह चारों तरफ़ रेत में समाई नमी को फिर से बूँदों में बदलती है। बूँद-बूँद रिसती है और कुंई में पानी जमा होने लगता है– खारे पानी के सागर में अमृत जैसा मीठा पानी।

इस अमृत को पाने के लिए मरुभूमि के समाज ने खूब मंथन किया है। अपने अनुभवों को व्यवहार में उतारने का पूरा एक शास्त्र विकसित

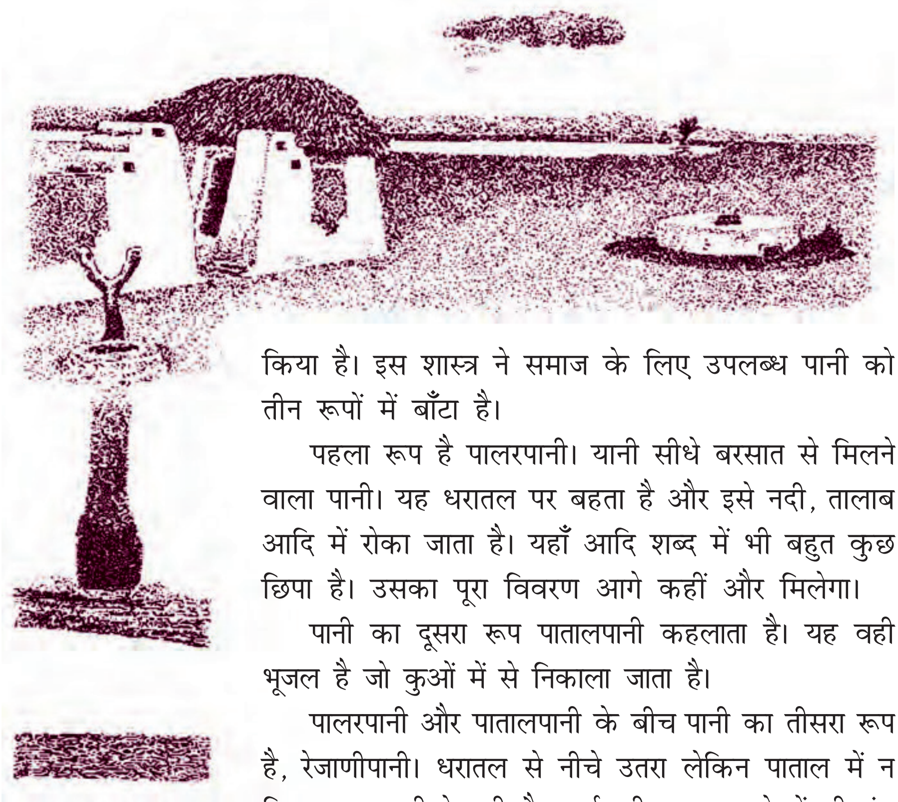

किया है। इस शास्त्र ने समाज के लिए उपलब्ध पानी को तीन रूपों में बाँटा है।

पहला रूप है पालरपानी। यानी सीधे बरसात से मिलने वाला पानी। यह धरातल पर बहता है और इसे नदी, तालाब आदि में रोका जाता है। यहाँ आदि शब्द में भी बहुत कुछ छिपा है। उसका पूरा विवरण आगे कहीं और मिलेगा।

पानी का दूसरा रूप पातालपानी कहलाता है। यह वही भूजल है जो कुओं में से निकाला जाता है।

पालरपानी और पातालपानी के बीच पानी का तीसरा रूप है, रेजाणीपानी। धरातल से नीचे उतरा लेकिन पाताल में न मिल पाया पानी रेजाणी है। वर्षा की मात्रा नापने में भी इंच या सेंटीमीटर नहीं बल्कि रेजा शब्द का उपयोग होता है। और रेजा का माप धरातल पर हुई वर्षा को नहीं, धरातल में समाई वर्षा को नापता है। मरुभूमि में पानी इतना गिरे कि पाँच अंगुल भीतर समा जाए तो उस दिन की वर्षा को पाँच अंगुल रेजो कहेंगे।

रेजाणीपानी खड़िया पट्टी के कारण पातालीपानी से अलग बना रहता है। ऐसी पट्टी के अभाव में रेजाणीपानी धीरे-धीरे नीचे जाकर पातालीपानी में मिलकर अपना विशिष्ट रूप खो देता है। यदि किसी जगह भूजल, पातालीपानी खारा है तो रेजाणीपानी भी उसमें मिलकर खारा हो जाता है।

इस विशिष्ट रेजाणीपानी को समेट सकने वाली कुंई बनाना सचमुच एक विशिष्ट कला है। चार-पाँच हाथ के व्यास की कुंई को तीस से साठ-पैंसठ हाथ की गहराई तक उतारने वाले चेजारो कुशलता और सावधानी की पूरी ऊँचाई नापते हैं।

चेजो यानी चिनाई का श्रेष्ठतम काम कुंई का प्राण है। इसमें थोड़ी-सी भी चूक चेजारो के प्राण ले सकती है। हर दिन थोड़ी-थोड़ी खुदाई होती है, डोल से मलबा निकाला जाता है और फिर आगे की खुदाई रोक कर अब तक हो चुके काम की चिनाई की जाती है ताकि मिट्टी भसके, धँसे नहीं।

बीस-पच्चीस हाथ की गहराई तक जाते-जाते गरमी बढ़ती जाती है और हवा भी कम होने लगती है। तब ऊपर से मुट्ठी भर-भर कर रेत नीचे तेज़ी से फेंकी जाती है- मरुभूमि में जो हवा रेत के विशाल टीलों तक को यहाँ से वहाँ उड़ा देती है, वही हवा यहाँ कुंई की गहराई में एक मुट्ठी रेत से उड़ने लगती है और पसीने में नहा रहे चेलवांजी को राहत दे जाती है। कुछ जगहों पर कुंई बनाने का यह कठिन काम और भी कठिन हो जाता है। किसी-किसी जगह ईंट की चिनाई से मिट्टी को रोकना संभव नहीं हो पाता। तब कुंई को रस्से से 'बाँधा' जाता है।

कुंई पर सजगता का पहरा

पहले दिन कुंई खोदने के साथ-साथ खींप[1] नाम की घास का ढेर जमा कर लिया जाता है। चेजारो खुदाई शुरू करते हैं और बाकी लोग खींप की घास से कोई तीन अंगुल मोटा रस्सा बटने लगते हैं। पहले दिन का काम पूरा होते-होते कुंई कोई दस हाथ

1. *एक प्रकार की घास जिसके रेशों से रस्सी बनाई जाती है।*

गहरी हो जाती है। इसके तल पर दीवार के साथ सटा कर रस्से का पहला गोला बिछाया जाता है और फिर उसके ऊपर दूसरा, तीसरा, चौथा– इस तरह ऊपर आते जाते हैं। खींप घास से बना खुरदरा मोटा रस्सा हर घेरे पर अपना वज़न डालता है और बटी हुई लड़ियाँ एक दूसरे में फँस कर मज़बूती से एक के ऊपर एक बैठती जाती हैं। रस्से का आखिरी छोर ऊपर रहता है।

अगले दिन फिर कुछ हाथ मिट्टी खोदी जाती है और रस्से की पहले दिन जमाई गई कुंडली दूसरे दिन खोदी गई जगह में सरका दी जाती है। ऊपर छूटी दीवार में अब नया रस्सा बाँधा जाता है। रस्से की कुंडली को टिकाए रखने के लिए बीच-बीच में कहीं-कहीं चिनाई भी करते जाते हैं।

लगभग पाँच हाथ के व्यास की कुंई में रस्से की एक ही कुंडली का सिर्फ़ एक घेरा बनाने के लिए लगभग पंद्रह हाथ लंबा रस्सा चाहिए। एक हाथ की गहराई में रस्से के आठ-दस लपेटे खप जाते हैं और इतने में ही रस्से की कुल लंबाई डेढ़ सौ हाथ हो जाती है। अब यदि तीस हाथ गहरी कुंई की मिट्टी को थामने के लिए रस्सा बाँधना पड़े तो रस्से की लंबाई चार हज़ार हाथ के आसपास बैठती है। नए लोगों को तो समझ में भी नहीं आएगा कि यहाँ कुंई खुद रही है कि रस्सा बन रहा है!

कहीं-कहीं न तो ज़्यादा पत्थर मिलता है न खींप ही। लेकिन रेजाणीपानी है तो वहाँ भी कुंइयाँ ज़रूर बनती हैं। ऐसी जगहों पर भीतर की चिनाई लकड़ी के लंबे लट्ठों से की जाती है। लट्ठे अरणी, बण (कैर), बावल या कुंबट के पेड़ों की डगालों[1] से बनाए जाते हैं। इस काम के लिए सबसे उम्दा लकड़ी अरणी की ही है पर उम्दा या मध्यम दरजे की लकड़ी न मिल पाए तो आक तक से भी काम लिया जाता है।

लट्ठे नीचे से ऊपर की ओर एक दूसरे में फँसा कर सीधे खड़े किए जाते हैं। फिर इन्हें खींप की रस्सी से बाँधा जाता है। कहीं-कहीं चग की रस्सी भी काम में लाते हैं। यह बँधाई भी कुंडली का आकार लेती है, इसलिए इसे साँपणी भी कहते हैं।

1. तना या मोटी टहनियाँ

नए लोगों को तो समझ में भी नहीं आएगा कि यहाँ कुंई खुद रही है

नीचे खुदाई और चिनाई का काम कर रहे चेलवांजी को मिट्टी की खूब परख रहती है। खड़िया पत्थर की पट्टी आते ही सारा काम रुक जाता है। इस क्षण नीचे धार लग जाती है। चेजारो ऊपर आ जाते हैं।

कुंई की सफलता यानी सजलता उत्सव का अवसर बन जाती है। यों तो पहले दिन से काम करने वालों का विशेष ध्यान रखना यहाँ की परंपरा रही है, पर काम पूरा होने पर तो विशेष भोज का आयोजन होता था। चेलवांजी को विदाई के समय तरह-तरह की भेंट दी जाती थी। चेजारो के साथ गाँव का यह संबंध उसी दिन नहीं टूट जाता था। आच प्रथा[1] से उन्हें वर्ष-भर के तीज-त्योहारों में, विवाह जैसे मंगल

1. इस प्रथा के अंतर्गत कुंई खोदने वालों को वर्ष भर सम्मानित किया जाता है

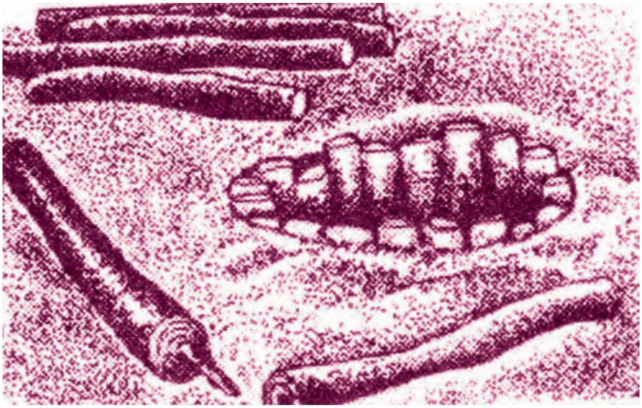

कुंई के निर्माण में लट्ठे का प्रयोग

अवसरों पर नेग, भेंट दी जाती और फ़सल आने पर खलियान में उनके नाम से अनाज का एक अलग ढेर भी लगता था। अब सिर्फ़ मज़दूरी देकर भी काम करवाने का रिवाज आ गया है।

कई जगहों पर चेजारो के बदले सामान्य गृहस्थ भी इस विशिष्ट कला में कुशल बन जाते थे। जैसलमेर के अनेक गाँवों में पालीवाल ब्राह्मणों और मेघवालों (अब अनुसूचित जाति के अंतर्गत) के हाथों से सौ–दो सौ बरस पहले बनी पार या कुंइयाँ आज भी बिना थके पानी जुटा रही हैं।

कुंई का मुँह छोटा रखने के तीन बड़े कारण हैं। रेत में जमा नमी से पानी की बूँदें बहुत धीरे–धीरे रिसती हैं। दिन भर में एक कुंई मुश्किल से इतना ही पानी जमा कर पाती है कि उससे दो–तीन घड़े भर सकें। कुंई के तल पर पानी की मात्रा इतनी कम होती है कि यदि कुंई का व्यास बड़ा हो तो कम मात्रा का पानी ज़्यादा फैल जाएगा और तब उसे ऊपर निकालना संभव नहीं होगा। छोटे व्यास की कुंई में धीरे–धीरे रिस कर आ रहा पानी दो–चार हाथ की ऊँचाई ले लेता है। कई जगहों पर कुंई से पानी निकालते समय छोटी बाल्टी के बदले छोटी चड़स का उपयोग भी इसी कारण से किया जाता है। धातु की बाल्टी पानी में आसानी से डूबती नहीं। पर मोटे कपड़े या चमड़े की चड़स के मुँह पर लोहे का वज़नी कड़ा बँधा होता है। चड़स पानी से टकराता है, ऊपर का वज़नी भाग नीचे के भाग पर गिरता है और इस तरह कम मात्रा के पानी में भी ठीक से डूब जाता है। भर जाने के बाद ऊपर उठते ही चड़स अपना पूरा आकार ले लेता है।

पिछले दौर में ऐसे कुछ गाँवों के आसपास से सड़कें निकली हैं, ट्रक दौड़े हैं। ट्रकों की फटी ट्यूब से भी छोटी चड़सी बनने लगी हैं।

कुंई के व्यास का संबंध इन क्षेत्रों में पड़ने वाली तेज़ गरमी से भी है। व्यास बड़ा हो तो कुंई के भीतर पानी ज़्यादा फैल जाएगा। बड़ा व्यास पानी को भाप बनकर उड़ने से रोक नहीं पाएगा।

कुंई को, उसके पानी को साफ़ रखने के लिए उसे ढँककर रखना ज़रूरी है। छोटे मुँह को ढँकना सरल होता है। हरेक कुंई पर लकड़ी के बने ढक्कन ढँके मिलेंगे। कहीं-कहीं खस की टट्टी की तरह घास-फूस या छोटी-छोटी टहनियों से बने ढक्कनों का भी उपयोग किया जाता है। जहाँ नई सड़कें निकली हैं और इस तरह नए और अपरिचित लोगों की आवक-जावक भी बढ़ गई है, वहाँ अमृत जैसे इस मीठे पानी की सुरक्षा भी करनी पड़ती है। इन इलाकों में कई कुंइयों के ढक्कनों पर छोटे-छोटे ताले भी लगने लगे हैं। ताले कुंई के ऊपर पानी खींचने के लिए लगी घिरनी, चकरी पर भी लगाए जाते हैं।

कुंई गहरी बने तो पानी खींचने की सुविधा के लिए उसके ऊपर घिरनी या चकरी भी लगाई जाती है। यह गरेड़ी, चरखी या फरेड़ी भी कहलाती है। फरेड़ी लोहे की दो भुजाओं पर भी लगती है। लेकिन प्रायः यह गुलेल के आकार के एक मज़बूत तने को काट कर, उसमें आर-पार छेद बना कर लगाई जाती है। इसे ओड़ाक कहते हैं। ओड़ाक और चरखी के बिना इतनी गहरी और संकरी कुंई से पानी निकालना बहुत कठिन काम बन सकता है। ओड़ाक और चरखी चड़सी को यहाँ-वहाँ बिना टकराए सीधे ऊपर तक लाती है, पानी बीच में छलक कर गिरता नहीं। वज़न खींचने में तो इससे सुविधा रहती ही है।

खड़िया पत्थर की पट्टी एक बड़े भाग से गुज़रती है इसलिए उस पूरे हिस्से में एक के बाद एक कुंई बनती जाती है। ऐसे क्षेत्र में एक बड़े साफ़-सुथरे मैदान में तीस-चालीस कुंइयाँ भी मिल जाती हैं। हर घर की एक कुंई। परिवार बड़ा हो तो एक से अधिक भी।

निजी और सार्वजनिक संपत्ति का विभाजन करने वाली मोटी रेखा कुंई के मामले में बड़े विचित्र ढंग से मिट जाती है। हरेक की अपनी-अपनी कुंई है। उसे बनाने और

उससे पानी लेने का हक उसका अपना हक है। लेकिन कुंई जिस क्षेत्र में बनती है, वह गाँव-समाज की सार्वजनिक ज़मीन है। उस जगह बरसने वाला पानी ही बाद में वर्ष-भर नमी की तरह सुरक्षित रहेगा और इसी नमी से साल-भर कुंइयों में पानी भरेगा। नमी की मात्रा तो वहाँ हो चुकी वर्षा से तय हो गई है। अब उस क्षेत्र में बनने वाली हर नई कुंई का अर्थ है, पहले से तय नमी का बँटवारा। इसलिए निजी होते हुए भी सार्वजनिक क्षेत्र में बनी कुंइयों पर ग्राम समाज का अंकुश लगा रहता है। बहुत ज़रूरत पड़ने पर ही समाज नई कुंई के लिए अपनी स्वीकृति देता है।

हर दिन सोने का एक अंडा देने वाली मुर्गी की चिरपरिचित कहानी को ज़मीन पर उतारती है कुंई। इससे दिन भर में बस दो-तीन घड़ा मीठा पानी निकाला जा सकता है। इसलिए प्रायः पूरा गाँव गोधूलि बेला में कुंइयों पर आता है। तब मेला-सा लग जाता है। गाँव से सटे मैदान में तीस-चालीस कुंइयों पर एक साथ घूमती घिरनियों का स्वर गोचर से लौट रहे पशुओं की घंटियों और रंभाने की आवाज़ में समा जाता है। दो-तीन घड़े भर जाने पर डोल और रस्सियाँ समेट ली जाती हैं। कुंइयों के ढक्कन वापस बंद हो जाते हैं। रात-भर और अगले दिन-भर कुंइयाँ आराम करेंगी।

रेत के नीचे सब जगह खड़िया की पट्टी नहीं है, इसलिए कुंई भी पूरे राजस्थान में नहीं मिलेगी। चुरू, बीकानेर, जैसलमेर और बाड़मेर के कई क्षेत्रों में यह पट्टी चलती है और इसी कारण वहाँ गाँव-गाँव में कुंइयाँ ही कुंइयाँ हैं। जैसलमेर ज़िले के एक गाँव खड़ेरों की ढाणी में तो एक सौ बीस कुंइयाँ थीं। लोग इस क्षेत्र को छह-बीसी (छह गुणा बीस) के नाम से जानते थे। कहीं-कहीं इन्हें पार भी कहते हैं। जैसलमेर तथा बाड़मेर के कई गाँव पार के कारण ही आबाद हैं और इसीलिए उन गाँवों के नाम भी पार पर ही हैं। जैसे जानरे आलो पार और सिरगु आलो पार।

अलग-अलग जगहों पर खड़िया पट्टी के भी अलग-अलग नाम हैं। कहीं यह चारोली है तो कहीं धाधड़ो, धड़धड़ो, कहीं पर बिट्टू रो बल्लियो के नाम से भी जानी जाती है तो कहीं इस पट्टी का नाम केवल 'खड़ी' भी है।

और इसी खड़ी के बल पर खारे पानी के बीच मीठा पानी देती खड़ी रहती है कुंई।

अभ्यास

1. राजस्थान में ***कुंई*** किसे कहते हैं? इसकी गहराई और व्यास तथा सामान्य कुओं की गहराई और व्यास में क्या अंतर होता है?
2. दिनोदिन बढ़ती पानी की समस्या से निपटने में यह पाठ आपकी कैसे मदद कर सकता है तथा देश के अन्य राज्यों में इसके लिए क्या उपाय हो रहे हैं? जानें और लिखें?
3. चेजारो के साथ गाँव समाज के व्यवहार में पहले की तुलना में आज क्या फ़र्क आया है पाठ के आधार पर बताइए?
4. ***निजी होते हुए भी सार्वजनिक क्षेत्र में कुंइयों पर ग्राम समाज का अंकुश लगा रहता है।*** लेखक ने ऐसा क्यों कहा होगा?
5. कुंई निर्माण से संबंधित निम्न शब्दों के बारे में जानकारी प्राप्त करें- पालरपानी, पातालपानी, रेजाणीपानी

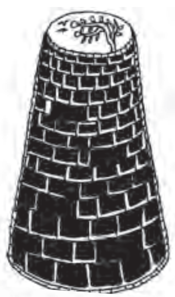

11067CH03

आलो-आँधारि*

– *बेबी हालदार*

मैं अब अपने किराये के घर में थी। सब समय सोचती रहती कि काम न मिला तो बच्चों को क्या खिलाऊँगी, कैसे उन्हें पालूँगी-पोसूँगी! मैं स्वयं एक घर से दूसरे घर काम खोजने जाती और दूसरों से भी काम जुटाने के लिए कहती। मुझे यह चिंता भी थी कि महीना खत्म होने पर घर का किराया देना होगा। पता नहीं इससे कम किराये में कोई घर मिलेगा या नहीं! काम के साथ मैं घर भी ढूँढ़ रही थी। डेढ़ सप्ताह हुए जा रहे थे और काम कहीं मिल नहीं रहा था। मुझे बच्चों के साथ उस घर में अकेले रहते देख आस-पास के सभी लोग पूछते, तुम यहाँ अकेली रहती हो? तुम्हारा स्वामी कहाँ रहता है? तुम कितने दिनों से यहाँ हो? तुम्हारा स्वामी वहाँ क्या करता है? तुम क्या यहाँ अकेली रह सकोगी? तुम्हारा स्वामी क्यों नहीं आता? ऐसी बातें सुन मेरी किसी के पास खड़े होने की इच्छा नहीं होती, किसी से बात करने की इच्छा नहीं होती। बच्चों को साथ ले मैं उसी समय काम खोजने निकल पड़ती। कुछ घंटों बाद जब मैं घर लौटती तब फिर पड़ोस की औरतें आकर पूछतीं, क्यों, काम मिला? फिर मेरे चेहरे का भाव देख कोई-कोई मुँह से चुक-चुक आवाज़ निकाल कहती, मिल जाएगा। इधर-उधर ढूँढ़ने-ढाँढ़ने से मिल ही जाएगा। मैं उनकी बातें अनसुनी कर अपने बच्चों की बातें करने लगती।

---

* *अँधेरे का उजाला*

मेम साहब की कोठी के सामने की एक कोठी में सुनील नाम का तीस–बत्तीस साल का एक युवक मोटर चलाता था। वह मुझे पहचानता था इसलिए मैंने उससे भी अपने काम के बारे में कह रखा था। एक दिन रास्ते में मुझे देखकर उसने पूछा, तुम क्या अब उस कोठी में काम नहीं करतीं? मैंने कहा, मुझे उस कोठी को छोड़े डेढ़ सप्ताह हो गए। अभी तक मुझे कोई काम नहीं मिला है। वह बोला, ठीक है, मुझे काम के बारे में कुछ पता चलेगा तो बताऊँगा। दो–एक दिन बाद दोपहर को बच्चों को खिला–पिलाकर मैं उनके साथ सो रही थी कि सुनील आया और बोला, क्यों, काम मिला? मैंने कहा, नहीं, अभी तक कुछ नहीं मिला। वह बोला, तो चलो मेरे साथ। मैंने पूछा, कहाँ? तो वह बोला, काम करना है तो मैं तुम्हें लिए चलता हूँ, बाकी बातें तुम स्वयं वहाँ कर लेना। उसकी बात सुन मैं फ़ौरन उसके साथ निकल पड़ी। वहाँ पहुँचकर सुनील ने गेट के बाहर लगी बेल बजाई तो उस घर के साहब बाहर आए। सुनील ने उनसे कहा, सर, आपने कहा था न? मैं इसे ले आया हूँ। उन्होंने मुझसे पूछा, तुम बंगाली हो? मैं बोली, हाँ। इसके बाद काम के बारे में बातें हुईं उन्होंने कहा, देखो, यहाँ जो औरत काम करती है उसे मैं आठ सौ रुपये देता हूँ। तुम्हारे पैसों के बारे में मैं तुम्हारा काम देखकर बताऊँगा। मैं बोली, ठीक है। यहाँ कितने बजे आने से ठीक होगा? उन्होंने कहा, तुम जितनी जल्दी आ सको क्योंकि मैं बहुत सबेरे उठता हूँ। मैं बोली, मुझे तो जाकर बच्चों के लिए खाना–वाना बनाना होगा। मैं छह–सात बजे तक आऊँगी। इतना कहकर मैं चलने लगी तो मुझे लगा वह पैसों के बारे में कुछ कहना चाहते हैं। सुनील जाने को हुआ तो उससे मैंने थोड़ा रुक जाने को कहा। वह बोला, तुम बात करके आ जाना, मैं चलता हूँ। मैंने कहा, बस थोड़ा सा रुक जाओ। लेकिन साहब ने फिर पैसों की बात नहीं उठाई और सिर्फ़ इतना कहा, कल से तुम काम पर आ जाओ।

अगले दिन मैं काम पर आई तो दूर से ही पैंतीस–चालीस वर्ष की एक विधवा को उसी घर में काम के लिए जाते देखा। साहब बाहर पेड़ों में पानी दे रहे थे। मुझे देखते ही वह भीतर गए और उस औरत से साफ़–साफ़ बातें कर उसी समय उसे काम से हटा दिया। वह औरत भी बंगाली थी। बाहर आते ही उसने मुझे गालियाँ

देना शुरू कर दिया। मैंने कहा, देखो, मैं कुछ नहीं जानती। यदि जानती होती कि यहाँ पहले से ही कोई काम कर रहा है तो मैं नहीं आती। मुझसे कहने से कोई लाभ नहीं। तुम साहब को मेरी तरफ़ से जाकर बता दो कि वह इस तरह काम करने को राज़ी नहीं है। उसने ऐसा कुछ नहीं किया और मुझे बकते-बकते चली गई। साहब आकर मुझे भीतर ले गए और सब समझा-बुझा दिया कि क्या करना होगा क्या नहीं करना होगा। बस उस दिन से मैं अपने मन से खाना-वाना बनाकर, टेबिल पर रखकर घर जाने लगी। मेरा काम देखकर घर में सभी आश्चर्य करते। एक दिन साहब ने पूछा, तुम इतना ढेर सारा काम इतने कम समय में और इतनी अच्छी तरह कैसे कर लेती हो? कहाँ सीखा तुमने यह सब? मैंने कहा, घर के काम में मुझे असुविधा नहीं होती क्योंकि बचपन से अभ्यास है। बचपन से ही मैं बिना मा[1] के रही हूँ। मेरे बाबा भी सब समय घर पर नहीं होते थे। इसी कारण मेरा पढ़ना-लिखना भी नहीं हो सका।

मैं इसी तरह रोज़ सबेरे आती और दोपहर तक सारा काम खत्म कर चली जाती। बीच-बीच में साहब मेरे बारे में इधर-उधर की बातें पूछ लेते। एक दिन उन्होंने मेरे बच्चों की पढ़ाई-लिखाई के बारे में पूछा तो मैंने कहा, मैं तो पढ़ाना चाहती हूँ लेकिन वैसा सुयोग कहाँ है, फिर भी चेष्टा तो करूँगी ही बच्चों के लिए। उन्होंने एक दिन बुलाकर फिर कहा, तुम अपने लड़के और लड़की को लेकर आना। यहाँ एक छोटा-सा स्कूल है। मैं वहाँ बोल दूँगा। तुम रोज़ बच्चों को वहाँ छोड़ देना और घर जाते समय अपने साथ ले जाना। मैं अब बच्चों को साथ लेकर आने लगी। उन्हें स्कूल में छोड़, घर आकर अपने काम में लग जाती। स्कूल से बच्चे जब मेरे पास आते तो साहब कुछ न कुछ उन्हें खाने को देते।

अब मैं सोचने लगी कि मुझे कहीं और भी काम करना चाहिए क्योंकि इतने पैसों में क्या बच्चों को पालूँगी-पोसूँगी और क्या घर का किराया दूँगी! मैंने साहब से कहा कि यदि उन्हें पता चले कि किसी को काम करने वाले की ज़रूरत है तो

1. माँ

मुझे बताएँ। उन्होंने कहा कि आस-पास पता कर वह मुझे बताएँगे लेकिन मुझे अब कहीं काम ढूँढ़ने नहीं जाना है। फिर भी मुझे अपना यह घर तो छोड़ना ही होगा, यह सोचकर मैं अपने दादा[1] लोगों के आस-पास ही घर ढूँढ़ने गई।

घर मिल भी गया और उसी दिन पुराना घर छोड़ मैं उसमें चली आई। इस घर का भाड़ा तो पाँच सौ रुपये ही था लेकिन टट्टी-पेशाब के लिए बाहर जाना होता था। मैंने सोचा जब सब इसी तरह रह रहे हैं तो मैं क्यों नहीं रह सकूँगी! वहाँ भी लोग मेरे बारे में सब कुछ जानने की चेष्टा करते और मुझे लेकर तरह-तरह की बातें करते। कोई मुझसे अच्छा व्यवहार करता तो कोई नहीं। कोई मुझे अच्छी सलाह देता तो कोई मुझे देख दबी ज़बान से कुछ कहने लगता। इन सब बातों से मुझे कुछ लेना-देना नहीं था। मैं सबेरे उठकर बच्चों को खिला-पिलाकर रेडी करती और घर में ताला लगाकर उनके साथ निकल पड़ती। मैं एक ही कोठी में काम करते कैसे अपना काम चलाऊँगी और कैसे घर का किराया दूँगी, इस बात को लेकर लोग आपस में खूब बातें करते। मैं स्वयं भी चिंतित थी कि मुझे और दो-एक कोठियों में काम नहीं मिला तो इतने पैसों में गुज़ारा कैसे होगा। मैं रोज़ साहब से पूछती कि किसी ने उन्हें काम के बारे में कुछ बताया क्या। वह मेरा प्रश्न और कोई बात कर टाल देते लेकिन उन्हें देखकर मुझे लगता जैसे वह नहीं चाहते कि मैं कहीं और भी काम करूँ। शायद वह सोचते रहे हों कि मुझसे वह सब होगा नहीं और होगा भी तो उससे बच्चों की पढ़ाई-लिखाई ठीक से नहीं चल पाएगी। शायद इसीलिए उन्होंने एक दिन हठात् मुझसे पूछा, बेबी, महीने में तुम्हारा कितना खर्चा हो जाता है? शरम से मैं कुछ नहीं बोली और उन्होंने भी दुबारा नहीं पूछा।

मुझे सबेरे जल्दी उठकर, बिना कुछ खाए-पिए, काम पर आना पड़ता था। खाना-वाना बनाकर मैं घर जाती और वही सब काम वहाँ जाकर करती। साहब कहते तो कुछ नहीं लेकिन कभी-कभी ऐसा कुछ कर बैठते जिससे मैं जान जाती कि उनके मन में मेरे लिए माया है। सबेरे उनके यहाँ जाने पर कभी देखती कि

1. *बड़ा भाई*

वह बर्तन पोंछ रहे हैं तो कभी उन्हें झाड़ू लेकर जाले ढूँढ़ते देखती। मैं पूछती कि उन्हें यह सब करने की क्या दरकार[1] है तो वह इधर-उधर का कोई बहाना बनाकर बात को टाल देते। उनके यहाँ काम करने में मुझे बहुत सुख मिलता। वहाँ कोई भी मेरे काम को लेकर कुछ नहीं कहता। कोई यह तक नहीं देखता कि मैं कुछ कर भी रही हूँ या नहीं। मुझे सबेरे देखते ही साहब का चेहरा खिल उठता लेकिन वह बोलते कुछ भी नहीं। वह जिस तरह से मुझे देखते उससे मुझे लगता जैसे सोच रहे हों कि इस बेचारी को किस अपराध के पीछे अपना घर-परिवार छोड़ बच्चों के साथ यहाँ अकेले रहने को बाध्य होना पड़ा! उन्हें तब तक जितना मैं जान सकी थी उससे मुझे लगता कि कहीं मुझे दुख न पहुँचे, इस डर से वह मुझसे इस तरह की कोई बात नहीं करते थे। वह कुछ कहना शुरू करते फिर अचानक चुप हो जाते।

कुछ दिनों बाद एक दिन हठात् उन्होंने पूछा, अच्छा, बेबी यह तो बताओ कि यहाँ से जाकर तुम क्या करती हो? मैंने कहा, मैं जाते ही खाना बनाने में लग जाती हूँ और साथ ही साथ बच्चों को नहलाती-धुलाती हूँ। फिर उन्हें खिला-पिलाकर सुला देती हूँ। तीसरे पहर उनके साथ थोड़ा घूमती-घामती हूँ और शाम को संध्या-पूजाकर उन्हें पढ़ने बिठा देती हूँ। रात में फिर उन्हें खिलाना-पिलाना और सुलाना और सबेरे जल्दी से जल्दी यहाँ के लिए निकल पड़ना। बस यही है मेरे सारे दिन का काम। वह बोले, अच्छा, फिर जो तुम और काम ढूँढ़ रही हो तो उसके लिए तुम्हें समय कहाँ से मिलेगा? मैं बोली, इसी में से निकालना होगा, और नहीं तो क्या! बिना किए और कोई चारा भी तो नहीं! इस पर उन्होंने कहा, देखो, यदि मैं तुम्हारी कुछ मदद कर दूँ तब तो तुम कहीं और काम नहीं करोगी न? उनकी बात सुन मैं सोचने लगी वह मेरा कितना खयाल रखते हैं, कितना मुझे चाहते हैं! उन्होंने फिर पूछा, क्यों क्या हुआ? तुमने कुछ बताया नहीं! क्या सोच रही हो? मैं बस, कुछ भी तो नहीं,

1. *ज़रूरत*

कहकर चुप हो गई। उन्होंने कहा, देखो बेबी, तुम समझो कि मैं तुम्हारा बाप, भाई, मा, बंधु, सब कुछ हूँ। यह कभी मत सोचना कि यहाँ तुम्हारा कोई नहीं है। तुम अपनी सारी बातें मुझे साफ़-साफ़ बता सकती हो, मुझे बिलकुल भी बुरा नहीं लगेगा। थोड़ा रुककर उन्होंने फिर कहा, देखो, मेरे बच्चे मुझे तातुश कहते हैं, तुम भी मुझे वही कहकर बुला सकती हो। उस दिन से मैं उन्हें तातुश कहने लगी। मैं तातुश कहकर उन्हें बुलाती तो वह बहुत खुश होते और कहते, तुम मेरी लड़की जैसी हो। इस घर की लड़की हो। कभी यह मत सोचना कि तुम परायी हो। वहाँ कोई भी मेरे साथ पराये जैसा व्यवहार नहीं करता। तातुश के तीन लड़के थे। उस समय तक मैंने एक ही को देखा था और वह उनका सबसे छोटा लड़का था। उसके मुँह में जैसे ज़बान ही नहीं थी। मैं किचेन में ही काम कर रही होती तब भी चाय बनाने के लिए मुझसे न कह वह स्वयं अपनी चाय बना लेता। उसकी आदत ही थी कम बोलने की। मुझसे तो क्या, वह किसी से भी ज़्यादा बात नहीं करता था। तातुश ने एक दिन बताया कि उनका बड़ा लड़का आ रहा है। उन्होंने कहा, मेरा बड़ा लड़का, माने तुम्हारा बड़ा भाई। तातुश की इस तरह की बातें सुन मुझे बहुत अच्छा लगता। मैं सोचती कि सचमुच ही वह मुझे बहुत चाहते हैं।

दो-एक दिन बाद मैं सबेरे काम कर रही थी तो तातुश ने बुलाकर कहा, बेबी, तुमने क्या घर बदल लिया है? मैंने हाँ कहा तो वह बोले, तुमने घर बदला और मुझे बताया तक नहीं! मुझे चुप देख उन्होंने कहा, यह तुमने ठीक नहीं किया, बेबी। मैंने सोचा, सचमुच ही मुझसे भूल हुई, एक बार बताना तो चाहिए ही था। मेरे न बताने से उन्हें दुख हुआ, यह तो मालूम पड़ गया लेकिन यह समझ में नहीं आया कि उन्हें पता कैसे चला। स्वयं उन्होंने यह कहकर बात साफ़ कर दी कि सुनील ने उन्हें बताया था। मैं अभी सोच ही रही थी कि सुनील को कहाँ से पता चला होगा कि तातुश ने फिर कहा, सुनील तुमसे मिलने तुम्हारे पुराने घर गया था। वहाँ तुम्हें न देख उसने आस-पास के लोगों से पूछा तो पता चला कि तुम कहीं और चली गई हो। तातुश ने आगे बताया कि सबेरे वह दूध लेने गए थे तो वहाँ सुनील मिला था। उन्हें देखकर सुनील ने पूछा था, बेबी क्या अब आपके यहाँ काम नहीं करती? तातुश

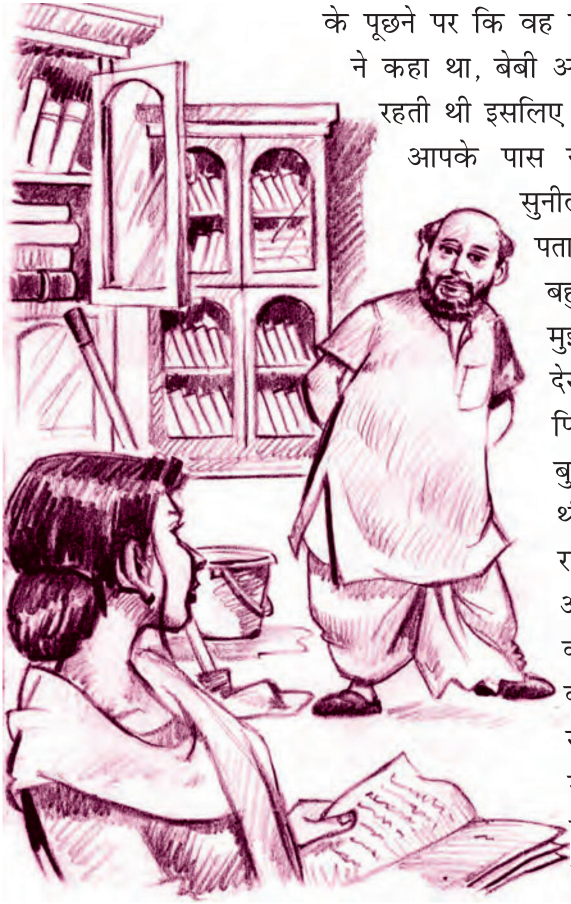

के पूछने पर कि वह ऐसा क्यों सोच रहा है, सुनील ने कहा था, बेबी अब वहाँ नहीं रहती जहाँ पहले रहती थी इसलिए मैंने सोचा कि वह शायद अब आपके पास नहीं है। तातुश मुझसे बोले, सुनील नहीं बताता तो मुझे कुछ पता ही नहीं चलता! मुझे सुनकर बहुत बुरा लगा। मैंने सोचा, सचमुच मुझसे अन्याय हुआ। वह थोड़ी देर मेरे चेहरे की ओर देखते रहे, फिर पूछा, अभी जब मैंने तुम्हें बुलाया तो तुम क्या कर रही थीं? मैं बोली, ऊपर डस्टिंग कर रही थी। वह बोले, तो जाओ अपना काम करो। मैं डस्टिंग करने ऊपर चली गई। वहाँ एक कमरे में तीन आलमारियाँ किताबों से भरी थीं। उन्हें देखकर हमेशा मेरे मन में यह बात उठती कि उन्हें कौन पढ़ता होगा। उनमें बांग्ला की भी काफ़ी किताबें थीं। कभी-कभी मैं दो-एक किताबें खोलकर भी देखती। एक दिन मैं उसी कमरे में डस्टिंग कर रही थी कि तातुश वहाँ पहुँच गए। उन्होंने देखा कि मैं बांग्ला की कोई किताब उलट-पलट रही हूँ। उस दिन उन्होंने मुझसे कुछ नहीं कहा। अगले दिन जब मैं सबरे काम पर आई और चाय बनाकर उन्हें देने गई तो उन्होंने पूछा, तुम कुछ पढ़ना-लिखना जानती हो? सुनकर मैं मन मसोसकर रह गई और एक ऊपरी हँसी हँसकर जाने लगी तो

उन्होंने फिर पूछा, क्या बिलकुल ही नहीं जानती? मैं बोली, झूठ क्यों कहूँ कि एकदम नहीं जानती लेकिन वह जानना नहीं के बराबर ही है। तब उन्होंने पूछा, फिर भी, कहाँ तक पढ़ी हो? मैं बोली, छठी–सातवीं तक। उतनी पढ़ाई किस काम की! मुझे लगा, मेरी बात सुन तातुश कुछ सोचने लगे। उस दिन उन्होंने फिर कुछ और नहीं कहा।

अगले दिन मैं आई तो मुझे देख वह हँसने लगे। वैसे भी उनके चेहरे पर सब समय हँसी रहती थी, देखकर लगता कि उनके मन में गुस्सा है ही नहीं। बोलते भी वह बहुत आहिस्ता–आहिस्ता थे। उन्हें देख मुझे श्री रामकृष्ण याद आ जाते थे। मैं उनसे बातें करने लगती तो फिर वहाँ से उठने की मेरी इच्छा नहीं होती और एक बार बातें शुरू हुईं नहीं कि वह इधर–उधर की न जाने कितनी बातें मुझे बताने लगते। मैं तातुश के पास खड़ी यही सब सोच रही थी कि हठात् वह बोले, अच्छा, बेबी, तुम्हें किसी लेखक का नाम याद है? मैंने उनकी ओर देख हँसते हुए झट से कहा, हाँ, कई तो हैं, जैसे, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, काज़ी नज़रुल इस्लाम, शरत्चंद्र, सत्येंद्र नाथ दत्त, सुकुमार राय। मैंने इन लोगों के नाम लिए तो पता नहीं क्यों, तातुश मेरे सिर पर हाथ रख मुझे आश्चर्य से ऐसे देखने लगे जैसे उन्हें विश्वास नहीं हो रहा हो। कुछ क्षण बाद वह बोले, तुम्हें लिखने–पढ़ने का शौक है? मैंने कहा, शौक होने से भी क्या! लिखना–पढ़ना तो अब होने से रहा। उन्होंने कहा, होगा क्यों नहीं? मुझी को देखो, अभी तक पढ़ता हूँ। तुम्हें क्या पता नहीं मैंने इतनी किताबें क्यों रख छोड़ी हैं? मैं पढ़ सकता हूँ तो तुम क्यों नहीं पढ़ सकतीं? उन्होंने फिर कहा, तुम ज़रा मेरे साथ ऊपर चलो। मुझे ऊपर ले जाकर उन्होंने आलमारी से एक किताब निकाली और कहा, बताओ तो यह क्या लिखा है? मैंने देखकर सोचा, पढ़ तो ठीक ही लूँगी। फिर सोचा, लेकिन गलती हो गई तो? तो क्या, मैंने फिर सोचा, कह दूँगी मुझे पढ़ना–लिखना एकदम नहीं आता। तातुश मेरे मुँह की ओर देखे ही जा रहे थे। उन्होंने कहा, पढ़ो न, कुछ तो पढ़ो! मैंने तब बोल ही दिया, आमार मेये बेला, तसलीमा नासरिन। तातुश बोले, तुम यही सोच रही थीं न कि कहीं गलती तो नहीं हो जाएगी? मैं हँसने लगी। वह बोले, यह किताब तुम ले जाओ। घर पर समय मिले तो पढ़ना।

मैं किताब लेकर घर चली आई और रोज़ उसमें से एक एक-दो दो पेज कर पढ़ने लगी। मैं किताब लेकर पढ़ने बैठती तो आस-पास के लोग देखकर आपस में न जाने क्या बातें करते। मैं उनकी बातें अनसुनी कर देती। किताब पढ़ने में पहले मुझे थोड़ी दिक्कत होती थी लेकिन धीरे-धीरे वह दूर होने लगी। किताब पढ़ना मुझे बहुत अच्छा लगता। कुछ दिनों बाद तातुश ने एक दिन पूछा, तुम जो किताब ले गई थीं उसे ठीक से पढ़ तो रही हो? मैंने हाँ कहा तो वह बोले, मैं तुम्हें एक चीज़ दे रहा हूँ, तुम उसका इस्तेमाल करना। समझना कि वह भी मेरा ही एक काम है। मैंने पूछा, कौन सी चीज़? तातुश ने अपनी लिखने की टेबिल के ड्रार से एक पेन और कॉपी निकाली और बोले, इस कॉपी में तुम लिखना। लिखने को तुम अपनी जीवन-कहानी भी लिख सकती हो। होश सँभालने के बाद से अब तक की जितनी भी बातें तुम्हें याद आएँ सब इस कॉपी में रोज़ थोड़ा-थोड़ा लिखना। पेन और कॉपी हाथ में लिए मैं सोचने लगी कि इसका तो कोई ठिकाना नहीं कि जो लिखूँगी वह कितना गलत या सही होगा। तातुश ने पूछा, क्यों, क्या हुआ? क्या सोचने लगी? मैं चौंक पड़ी। फिर बोली, सोच रही थी कि लिख सकूँगी या नहीं। वह बोले, ज़रूर लिख सकोगी। लिख क्यों नहीं सकोगी! जैसे बने वैसे लिखना।

पेन और कॉपी ले मैं घर गई और उसी दिन से दो-एक पेज रोज़ लिखने लगी। लिखती और वह किताब भी पढ़ती। सबेरे काम पर आती तो तातुश पूछते कि कुछ लिखा या नहीं और यदि मैं हाँ कहती तो वह बहुत खुश होते और कहते, तुम यदि रोज़ लिखोगी तो मैं तुम्हें और भी प्यार करूँगा। किसी-किसी दिन लिखते-पढ़ते इतनी रात हो जाती कि तब तक आस-पास के लोग एक नींद सो भी चुके होते। नींद टूटने पर वे देखते कि मैं जगी हुई हूँ तो सबेरे कोई न कोई पूछ बैठता, बताओ तो, तुम इतना क्या लिखती-पढ़ती रहती हो? मैं कहती, उँह, कुछ भी तो नहीं। मुझे उन लोगों की बातें अच्छी नहीं लगती थीं और फिर वहाँ कुछ अन्य असुविधाएँ भी थीं जिनके कारण मैं अपना वह भाड़े का घर छोड़ना चाहती थी। सब समय मैं यही सोचा करती कि उससे अच्छी जगह कहाँ मिल सकती है। वहाँ पानी की असुविधा थी। वहाँ बाथरूम की असुविधा भी थी। चार घरों के बीच बाथरूम एक ही था।

सबेरे कोई पेशाब के लिए उसमें घुसता तो दूसरा उसमें घुसने के लिए बाहर खड़ा रहता। टट्टी के लिए बाहर जाना पड़ता था लेकिन वहाँ भी चैन से कोई टट्टी नहीं कर सकता था क्योंकि सुअर पीछे से आकर तंग करना शुरू कर देते। लड़के-लड़कियाँ, बड़े-बूढ़े, सभी हाथ में पानी की बोतल ले टट्टी के लिए बाहर जाते। अब वे वहाँ बोतल सँभालें या सुअर भगाएँ! मुझे तो यह देख-सुनकर बहुत खराब लगता। लड़कियों को हाथ में बोतल लिए जाते मैंने इसके पहले कभी नहीं देखा था। तातुश ने मुझसे पहले ही पूछा था, तुम जहाँ रहती हो वहाँ कोई बाथरूम-वाथरूम है कि नहीं? ऊपर एक बाथरूम है, तुम चाहो तो वहीं से नहा-धो-निपटकर जा सकती हो। उस दिन से मैं वहीं वह सब करने के बाद घर जाती। किसी-किसी दिन घर पहुँचने में देर हो जाती तो मकान-मालिक की स्त्री पूछने चली आती कि इतनी देर क्यों हुई। कभी-कभी वह यह भी जानना चाहती कि मैं कहाँ गई थी! उसकी बात सुन मुझे बहुत गुस्सा आता। मैं सोचती यह भी कोई बात हुई कि मैं सारा दिन काम पर रहूँ और लौटूँ तो बेमतलब की बातें सुनने को मिलें! मैं क्या किसी की बाँदी हूँ कि वह सब सुनना ही पड़ेगा! घर का भाड़ा देने में तो मैं नागा नहीं करती! तो फिर मेरे कहीं जाने से इन लोगों को इतना दर्द क्यों होता है! और मैं जाती भी कब-कब थी! समय ही कहाँ था मेरे पास! काम करके लौटती तो लिखने-पढ़ने बैठ जाती। कभी-कभी सविता से ज़रूर मिल आती। वह मेरी एक पुरानी कोठी की सहेली थी। उसके यहाँ से लौटने में कभी देर हो जाती तो सभी मुझे ऐसे देखते जैसे मैं कोई अपराध कर आ रही हूँ! बाज़ार-हाट करने भी जाना होता तो वह बूढ़ी, मकान-मालिक की स्त्री, कहती, कहाँ जाती है रोज़-रोज़? तेरा स्वामी है नहीं, तू तो अकेली ही है! तुझे इतना घूमने-घामने की क्या दरकार?

मैं सोचती, मेरा स्वामी मेरे साथ नहीं है तो क्या मैं कहीं घूम-फिर भी नहीं सकती! और फिर उसका साथ में रहना भी तो न रहने जैसा है! उसके साथ रह कर भी क्या मुझे शांति मिली! उसके होते हुए भी पाड़े[1] के लोगों की क्या-क्या बातें मैंने

1. *मोहल्ला*

नहीं सुनीं! जब उसी ने उन बातों को लेकर उनसे कभी कुछ नहीं कहा तो मैं आँख-मुँह बंद किए चुप न रह जाती तो क्या करती!

जब मेरे स्वामी के सामने वहाँ के लोगों के मुँह बंद नहीं होते थे तो यहाँ तो बच्चों को लेकर मैं अकेली थी! यहाँ तो वैसी बातें और भी सुननी पड़तीं। मैं काम पर आती-जाती तो आस-पास के लोग एक-दूसरे को बताते कि इस लड़की का स्वामी यहाँ नहीं रहता है, यह अकेली ही भाड़े के घर में बच्चों के साथ रहती है। दूसरे लोग यह सुनकर मुझसे छेड़खानी करना चाहते। वे मुझसे बातें करने की चेष्टा करते और पानी पीने के बहाने मेरे घर आ जाते। मैं अपने लड़के से उन्हें पानी पिलाने को कह कोई बहाना बना बाहर निकल आती। इसी तरह मैं जब बच्चों के साथ कहीं जा रही होती तो लोग ज़बरदस्ती न जाने कितनी तरह की बातें करते, कितनी सीटियाँ मारते, कितने ताने मारते! लेकिन मुझ पर कोई फ़र्क नहीं पड़ता। मैं उनसे बचकर निकल जाती। तातुश के यहाँ जब पहुँचती और वह बताते कि उनके किसी बंधु ने उनसे फिर मेरे पढ़ाई-लिखाई के बारे में पूछा है तो खुशी में मैं वह सब भूल जाती जो रास्ते में मेरे साथ घटता। तातुश के कुछ बंधु कोलकाता और दिल्ली में थे जिन्हें वह मेरे पढ़ने-लिखने के बारे में बताते रहते थे। वे लोग भी चिट्ठियाँ लिखकर या फ़ोन पर तातुश से मेरे संबंध में जब-तब पूछते रहते थे।

एक दिन मैं घर में बैठी अपने बच्चों से बातें कर रही थी कि तभी मकान-मालिक का बड़ा लड़का आकर दरवाज़े पर खड़ा हो गया। मैंने उससे बैठने को कहा। बस, वह बैठा तो उठने का नाम ही न ले! उसने बातें चालू कीं तो लगा वे कभी खत्म नहीं होंगी। उसकी बातें ऐसी थीं कि जवाब देने में मुझे शरम आ रही थी। मैं उससे वहाँ से चले जाने को भी नहीं कह पा रही थी और स्वयं भी बाहर नहीं जा सकती थी क्योंकि वह दरवाज़े पर ऐसे बैठा था कि उसकी बगल से निकला नहीं जा सकता था। मैं समझ रही थी कि वह क्या कहना चाह रहा है। ऐसे में उसकी बातों को मैं अनसुना न करती तो क्या करती! मैंने सोचा अब मेरा भला इसी में है कि इस घर को भी जल्दी से जल्दी छोड़ दूँ। उसकी बातों से यह साफ़ हो गया कि मैं यदि उसके कहने पर चलूँगी तब तो उस घर में रह सकूँगी, नहीं

तो नहीं। मैंने सोचा यह क्या इतना सहज है! घर में कोई मर्द नहीं है तो क्या इसी से मुझे हर किसी की कोई भी बात माननी होगी! मैं कल ही कहीं और घर ढूँढ़ लूँगी।

मैं अपने काम पर जाती रही और साथ ही साथ घर भी ढूँढ़ती रही। एक दिन काम पर से मैं घर लौट रही थी तो देखा कि मेरे बच्चे रोते-रोते दौड़ते चले आ रहे हैं। मेरे पास आ, वे बोले, मम्मी, मम्मी, जल्दी चलो, हमारा घर उन्होंने तोड़ दिया। बच्चों की बात से मैं चौंक पड़ी कि यह क्या हो गया! मैंने कहा, चलो, चलकर देखती हूँ। वहाँ पहुँचकर देखा कि सचमुच ही घर का सारा सामान बाहर बिखरा पड़ा है। वह सब देखकर मैं सिर पकड़कर बैठ गई और सोचने लगी कि बच्चों को लेकर अब मैं कहाँ जाऊँ! इतनी जल्दी दूसरा घर भी कहाँ मिलेगा! बच्चों को अपने पास बिठाए मैं रोने लगी।

उन्होंने सिर्फ़ मेरा ही घर नहीं तोड़ा था, आस-पास जो और घर थे उन्हें भी तोड़ डाला था। लेकिन उन घरों में कोई न कोई मर्द– बड़ा लड़का, स्वामी, ज़रूर था जबकि मेरे यहाँ होते हुए भी कोई नहीं था। इसीलिए मेरा सामान अभी तक उसी तरह बिखरा पड़ा था जबकि दूसरे घरों के लोग अपना सामान एक जगह सहेजकर नया घर खोजने निकल गए थे। हमें छोड़ वहाँ बस कुछ ही लोग और बचे थे। वे इसलिए रुक गए थे क्योंकि मेरे बच्चों से उन्हें मोह था और घर की वैसी हालत में वे उन्हें अकेले नहीं छोड़ना चाहते थे। मैं रो रही थी और मुझे रोते देख मेरे बच्चे भी रोने लगे थे। ऐसे समय में मेरी मदद को सामने आने वाला मेरा अपना कोई नहीं था। पास ही मेरे दो-दो भाई रहते थे। उन्हें मालूम था कि मैं कहाँ रहती हूँ। उन्हें यह भी मालूम था कि वहाँ के सभी घर तोड़ दिए गए हैं। फिर भी वे मेरी खोज-खबर लेने नहीं आए! मैंने सोचा मा होती तो देखती मैं आज किस हाल में हूँ! पता नहीं मेरे भाग्य में अभी और कितना कष्ट, और कितना दुख भोगना लिखा है!

उस दिन फिर कहीं घर खोजना-खाजना नहीं हुआ। रात सात-आठ बजे भोला दा आया। वह मुसलमान था और पास ही में रहता था। उसका घर भी तोड़ दिया

गया था। वह हम लोगों की तरफ़ का रहने वाला था और मेरे भाइयों और मेरे बाबा को भी जानता था। मेरे बच्चों से उसे बहुत लगाव था। भोला दा ने कहा, इस तरह बच्चों के साथ रात में तुम अकेली कैसे रहोगी? इतना कहकर वह वहीं हम लोगों के पास बैठ गया। उस हालत में क्या किसी को नींद आ सकती थी! उस खुली, गंदी जगह में हम सब ने ओस में वह रात किसी तरह काट दी। सबेरे भोला दा ने कहा, तुम जहाँ काम करती हो वहाँ के साहब से बात करके देखो न! मैंने सोचा, ठीक ही तो कह रहा है। तातुश ने तो पहले ही कहा था कि रहने के लिए वह मुझे जगह भी दे सकते हैं, एक बार बात कर देख ही लूँ! मैंने उससे कहा, भोला दा, तुम्हीं एक बार चल कर उनसे बात कर लो न! मेरी तो कहने की हिम्मत नहीं होती। भोला दा बोला, तो फिर चलो। मैं उसे लेकर चली आई। वह बाहर ही खड़ा रहा और मैं भीतर गई। देखा कि तातुश अखबार पढ़ रहे हैं। मुझे देखते ही वह बोले, क्या बात है, बेबी? रोज़ तो तुम ऐसी नहीं दिखतीं! तुम्हारा मुँह ऐसा सूखा-सूखा सा क्यों है? मैंने उन्हें सारी बातें बता दीं कि कैसे हमलोगों के घर बुलडोज़र से तोड़ डाले गए और कैसे सारी रात मुझे बच्चों के साथ बाहर ओस में पड़े रहना पड़ा। मैंने उनसे कहा, मेरे साथ मेरी जान-पहचान का एक आदमी आया है, आपसे बातें करना चाहता है। मेरी बात सुन तातुश फ़ौरन बाहर गए और भोला दा से बातें कर मेरे पास आए और बोले, तो तुम रात को ही क्यों नहीं चली आईं? बच्चों को लेकर रात भर बाहर क्यों रहीं? तुम्हें रात ही में चले आना था। खैर, अब बताओ कब आ रही हो? मैंने कहा, आप जब कहेंगे। तातुश बोले, अभी आ सकोगी? मैं राज़ी हो गई और घर जा एक रिक्शे में अपना सामान लाद बच्चों के साथ आ गई। रास्ते में मैं सोच रही थी कि तातुश तो एक ही बार कहने पर तैयार हो गए! अब आगे पता नहीं क्या होगा।

तातुश ने छत पर एक कमरा मेरे लिए खाली कर दिया। उस कमरे में अपना सारा सामान जमा मैं खाना बनाने की तैयारी करने लगी। तातुश ने ऊपर आकर देखा तो हँसते हुए बोले, तुम आज खाना न भी बनातीं तो चल जाता। नीचे तो काफ़ी

खाना रखा ही है! मैंने कहा, तो क्या हुआ! रखा रहे, दादा लोग खाएँगे। तातुश बोले, रात को एक बार नीचे एक गरम-गरम रोटी खिला सकोगी? अभी तक दोनों समय रोटी बनाने वाला कोई नहीं था। तुम जो खाना बना जाती थीं उसी को रात में भी खाना पड़ता था। अब तो तुम यहीं आ गई हो तो दोनों समय गरम-गरम खाना खिला सकोगी।

इसके बाद से मैं खाना-वाना और अन्य सभी काम अपनी मर्ज़ी से करने लगी। किसी को कुछ भी कहने की ज़रूरत नहीं होती। तातुश मुझे काम करते देखते तो कभी-कभी कहते, बेबी, तुम इतना काम कैसे कर पाती हो! सारा दिन काम करती रहती हो! थोड़ा आकर मेरे पास बैठो। मैं बैठ जाती तो पूछते, बच्चों ने कुछ नाश्ता-वास्ता किया कि नहीं? तुमने कुछ खाया-वाया? जाओ, ऊपर जाकर बच्चों को खिलाओ, फिर आकर अपना नाश्ता करना। जाओ, जल्दी जाओ। इतनी देर हो गई और अभी तक उन्हें कुछ दिया नहीं! वह फिर कहते, यहाँ से थोड़ा दूध ले जाकर उन्हें दे दो। यहाँ आने के बाद से मेरे बच्चों को रोज़ आधा लीटर दूध मिलने लगा था।

तातुश ने एक दिन कहा, देखो बेबी, इस घर में पहले भी कई औरतें काम कर चुकी हैं लेकिन तुम जैसी कोई लड़की अभी तक मुझे नहीं मिली। वह फिर बोले, देखो, तुम यह कभी मत सोचना कि तुम यहाँ बस काम पर लगी एक लड़की हो, या यह घर किसी और का है। इसे तुम अपना ही समझना। मेरी कोई लड़की नहीं, है, मैं तुम्हें अपनी लड़की जैसा मानता हूँ। मैंने सोचा, भला यह भी कोई कहने की बात है! यह तो मैं ही जानती हूँ कि यहाँ आकर मैं कितनी सुखी हूँ। सभी हमेशा मेरा खयाल रखते। कभी तबीयत खराब होती तो तातुश चिंता में पड़ जाते और मेरे कुछ काम स्वयं करने लग पड़ते। मुझे ज़बरदस्ती पड़ोस के डॉक्टर के पास भेज देते। डॉक्टर मेरी जाँच कर दवा लिख देता और मैं उसकी पर्ची लाकर तातुश को दे देती। वह जल्दी से जाकर मेरे लिए दवा ले आते। दवा सिर्फ़ लाते ही नहीं बल्कि जिस समय जो दवा खानी है उसे निकालकर दे भी देते और मेरे आना-कानी करने

पर जबरन खिला देते। मेरे बच्चे बीमार पड़ते तब भी वह फ़ौरन उनके लिए दवा ला देते। घर में काम करने वालों को इतनी अच्छी तरह रखे जाते मैंने कहीं नहीं देखा था। उनके यहाँ मुझे किसी चीज़ की कमी नहीं थी। तेल-साबुन, खाना-पीना, कपड़े-वपड़े, किसी भी चीज़ का अभाव वे लोग मुझे नहीं होने देते। मैं सोचती कि इतने घरों में मैं काम कर चुकी लेकिन इस घर के लोगों जैसा व्यवहार कहीं नहीं देखा। ऐसा लगता जैसे इस घर की सब कुछ मैं ही हूँ। पता नहीं इतना अच्छा घर, इतने अच्छे लोग फिर मुझे मिलेंगे या नहीं!

इस घर में मुझे सुख ही सुख था फिर भी कभी-कभी मेरा मन उदास हो उठता। दो मास से मुझे अपने बड़े लड़के की कोई खबर नहीं मिली थी। तातुश शायद यह समझते थे। एक दिन हठात् उन्होंने पूछा, बेबी, तुम्हारा बड़ा लड़का कहाँ रहता है? तुम कभी जाकर उसे मिलती क्यों नहीं? एक बार, दो बार, तीन बार-वह पूछे ही जा रहे थे और मैं कोई जवाब नहीं दे पा रही थी। कुछ देर बाद मुँह नीचा किए मैं बोली, मुझे तो पता ही नहीं कि वह कहाँ रहता है! तातुश चौंककर बोले, यह क्या बेबी, तुम्हें पता नहीं तुम्हारा लड़का कहाँ रहता है? मैंने कहा, उसे जो लोग ले गए थे वे मेरे घर के पास ही रहते थे। मैंने उनसे पूछा था। उन्होंने यह तो बताया था कि वह किस जगह रहता है लेकिन उन्हें उसके घर का नंबर ठीक-ठाक मालूम नहीं था। उन्होंने जो-जो नंबर बताए थे वहाँ मैं गई थी, एक बार नहीं, कई बार, लेकिन हर बार घूम-फिरकर लौट आई। बस इतना भर सुना है कि उस घर के मालिक की यहीं कहीं दवा की दुकान है। मैंने दो-एक लोगों से पूछा भी लेकिन किसी को ठीक से पता नहीं। तातुश चिंतित होकर बोले, यहाँ तो दवा की बहुत सी दुकानें हैं! उस दिन उन्होंने और कुछ नहीं कहा। अगले दिन सबेरे मुझे बुलाकर उन्होंने कहा, वे लोग जब तुम्हारे लड़के को ले जा रहे थे तो उसे छोड़ने से पहले उनसे तुम्हें सब कुछ अच्छी तरह जान-समझ लेना चाहिए था न? तुम्हें पता है ऐसे में न जाने क्या हो सकता है? उनकी बात सुनकर मैं चुप रही आई। कुछ ही क्षण बाद वह बिना मुझसे कुछ कहे बाहर चले गए और तीनेक घंटे बाद लौटे। आते ही वह

फ़ोन करने लगे। मैं किचेन में खाना बना रही थी। मैंने सुना, वह किसी से बातें कर रहे हैं और साथ-साथ मुझे बुला रहे हैं, बेबी, बेबी, सुनो! मैंने सोचा वह इस तरह मुझे क्यों बुला रहे हैं! मैं जल्दी से उनके पास जाकर खड़ी हो गई। वह फ़ोन पर बात किए ही जा रहे थे। बातें करते-करते वह मुझसे बोले, लो, बात करो। मैंने पूछा, कौन है? किसके साथ बात करूँ? वह बोले, बात करो न! देखो कौन है! मैंने फ़ोन कान से लगाया। पता नहीं कौन हलो-हलो किए जा रहा था। मैं उसकी आवाज़ पहचान नहीं पा रही थी। कान पर से फ़ोन हटा मैंने तातुश से पूछा, कौन बात कर रहा है? वह बोले, अरे, तुम अपने लड़के को ही नहीं पहचान रही हो? मैं चौंककर बोली, ऐं मेरा बाबू! मैंने फिर फ़ोन कान से लगाकर कहा, बेटा, बेटा, मैं तेरी मा बोल रही हूँ। वह बोला, मा, मा कौन? बेबी? मैं बोली, हाँ, बेटा, मैं तेरी मा। बेटा तू कैसा है? वह बोला, मा, मा, मैं बिलकुल ठीक हूँ, मा। मैं यहाँ अच्छी तरह हूँ। उसकी बातों से मुझे लगा मेरा लड़का अब बड़ा हो रहा है। उसकी आवाज़ भी बदल गई थी। दो-एक मास में ही वह कितना बदल गया था! उसे देखने की मेरी बहुत इच्छा होने लगी। तातुश भी समझ गए। उन्होंने पूछा, लड़के से मिलने जाओगी? मैं बोली, हाँ, देख लेती तो और भी अच्छा लगता। वह बोले, तो बताओ कब जाओगी? मैंने कहा, आप जब ले जाएँगे।

कुछ दिन बाद अपने लड़के से एक दिन मिलने गई तो देखा वह बाहर पौधों में पानी दे रहा है। मुझे नहीं लगा कि वह वहाँ ठीक से है। मैंने सोचा, इन लोगों की यह वयस[1] क्या काम करने की है! लेकिन मैं कर भी क्या सकती थी! मेरे लड़के ने जल्दी-जल्दी पास आकर मुझे प्रणाम किया। अपने भाई-बहन को देखकर वह बहुत खुश हुआ। उसके पास से मैं जब चलने लगी तो वह उदास हो गया। मैंने तब सोचा, उसे अब उस घर में नहीं रखूँगी, जैसे भी हो, उसे अपने पास ही रखूँगी। तातुश शायद यह सब समझते थे इसीलिए बीच-बीच में मुझसे उसे फ़ोन कर हाल-चाल जानने के लिए कहते रहते थे। मैं उसे फ़ोन करती तो वह सिर्फ़ यह जानना चाहता कि मैं कहाँ रहती हूँ, घर का नंबर क्या है। मैं यह सोचकर बात

1. उम्र, अवस्था

टाल जाती कि कहीं वह बिना किसी को बताए मेरे पास आ गया तो तातुश क्या सोचेंगे! वह बातों-बातों में कहते भी थे कि उसकी वयस का लड़का उन्होंने कभी नहीं रखा। उनकी यह बात मुझे कुछ दुखी ही करती और मैं सोचती कि इसका मतलब क्या यह है कि उन्हें मेरे लड़के पर विश्वास नहीं है! वह कभी यह क्यों नहीं कहते कि अपने लड़के को कुछ दिनों के लिए ले आओ! वह मुझे और मेरे बाकी दोनों बच्चों को इतना चाहते हैं तो फिर मेरा बड़ा लड़का ही क्यों उन्हें भारी पड़ता है! मैं कुछ समझ नहीं पाती लेकिन कहती भी कुछ नहीं।

होते-होते एक दिन तातुश ने स्वयं ही कहा, तुम अपने बड़े लड़के को काली पूजा पर कुछ दिनों के लिए ले आना। सुनकर मैं बहुत खुश हुई। वह फिर बोले, उसके लिए यहीं कहीं काम देखो जिससे वह रोज़ तुमसे मिल-जुल सके लेकिन, बेबी, जानती हो, बच्चों से काम कराना गैरकानूनी है! उसे वहाँ से छुड़ा लाना चाहिए। उसके लिए ऐसी किसी जगह काम देखो जहाँ रहते-रहते वह कोई और काम या कुछ लिखना-पढ़ना भी सीख सके। ऐसा ही कुछ हमें करना होगा लेकिन तीन बच्चों को लेकर क्या यहाँ रहना हो सकेगा? मुझे तो नहीं लगता। मैंने कहा, आपने तो कहा था कि मैं यहाँ काम करते-करते कहीं और भी दो-एक घंटे का काम पकड़ सकती हूँ? तो मैं वैसा ही क्यों न करूँ? तातुश बोले, उससे क्या होगा, बेबी! एक जगह से काम करके आओगी और आकर फिर यहाँ खटना होगा! ऐसे में तुम्हारा स्वास्थ्य कहाँ तक ठीक रहेगा? इतनी भाग-दौड़ करना ठीक नहीं, और फिर उसकी ज़रूरत भी क्या है! अभी तो यह सब जैसा चल रहा है वैसा ही चलाओ।

तातुश की बातें सुन मुझे बहुत माया होती। मैं सोचती इस तरह से तो कभी मेरे बाबा-मा ने भी मुझे नहीं समझाया। लगता है पिछले जीवन में वह सचमुच मेरे बाबा ही थे, नहीं तो मेरे अच्छे-बुरे की इतनी चिंता क्यों करते! थोड़ी देर बाद तातुश ने फिर कहा, तुम्हें मैंने लिखने-पढ़ने का जो काम दिया है तुम वही करती रहो। तुम जितना समय यहाँ-वहाँ के काम में लगाओगी उतना लिखने-पढ़ने में लगाओ। तुम देखोगी एक दिन वही तुम्हारे काम आएगा। और कुछ करने की क्या ज़रूरत? इसी

से काम चलाओ न, बेबी! और फिर यह भी तो सोचो कि तुम्हारे लिखने को लेकर मेरे बंधु तुम्हारा कितना उत्साह बढ़ा रहे हैं! हमेशा कहते रहते हैं कि लिखती जाओ, लिखना बंद मत करना! उन्हें मालूम पड़ेगा कि तुम वह न कर, बाहर जा-जा कर दूसरे काम कर रही हो तो वे मुझे ही तो दोष देंगे!

कुछ दिन बाद तातुश ने एक दिन मुझे बुलाया और कहा, बेबी, तुम अपने लड़के को वहाँ से ले आओ। मुझे उसका वहाँ काम करना बिलकुल अच्छा नहीं लगता। वह इसी तरह दूसरों के घर काम करता रहेगा तो उसका जीवन बरबाद हो जाएगा। यह ठीक नहीं। तातुश ने आगे कहा, मैं एक शिक्षक हूँ और मैं नहीं चाहूँगा बेबी, कि एक बच्चे का जीवन इस तरह नष्ट हो जाए। बेबी, तुम आज ही जाकर उसे ले आओ।

मैं उसी दिन जाकर अपने लड़के को ले आई। तातुश उसके लिए कोई अच्छी जगह ढूँढ़ने लगे, कोई ऐसी जगह, जहाँ रहकर वह घर का काम करते-करते कोई और हुनर या लिखना-पढ़ना भी सीख सके। ऐसा घर लेकिन मुश्किल ही से मिलता है। मेरे पास अब मेरे तीनों बच्चे थे फिर भी मैं खुश नहीं थी। मैं सोचती हम लोगों को खिला-पहना तो वह रहे ही हैं, और कितना करेंगे हमारे लिए! मुझे सचमुच बहुत बुरा लगता। मैंने तय किया कि जब तक मेरा बड़ा लड़का मेरे पास है तब तक मैं थोड़ा हिसाब से चलूँगी, जितना खाना पहले बनाती थी उतना ही अब भी बनाऊँगी। तातुश समझ गए थे कि खाने-पीने को लेकर मैं कुछ उलझन में हूँ। वह मुझे अपने सामने ही खाने को कहने लगे। कभी-कभी वह स्वयं प्लेट में खाना निकाल मुझे देते और उसी समय खा लेने को कहते। उन लोगों का ऐसा स्नेह देख कभी-कभी मैं सोचने लगती की मेरा इतना सुख अभी तक कहाँ था। मैंने इतने घरों में काम किया लेकिन इस घर जैसे लोग कहीं नहीं देखे। इसके पहले जहाँ भी मैं रही, वहाँ काम के लिए मुझे महीना मिलता था। यहाँ वैसा कुछ नहीं था। तातुश कहते, बेबी, मैं यह समझकर तुम्हें पैसे नहीं देता कि महीना दे रहा हूँ। तुम यह कभी मत सोचना कि मैं तुम्हें उस हिसाब से पैसे देता हूँ। तुम बस यही समझो कि तुम्हें जेब खर्च दे रहा हूँ।

मेरा जेब-खर्च तब थोड़ा बढ़ गया जब तातुश के छोटे लड़के अर्जुन दा के दो बंधु भी वहीं रहने लगे। अर्जुन दा के वे बंधु भी बहुत अच्छे थे। वे भी मुझे चाहते थे। मेरे बच्चों से भी बुला-बुलाकर वे बातें करते। उनमें एक का नाम सुखदीप था और एक का, रमण। अर्जुन दा से मुझे वे ही ज़्यादा अच्छे लगते और क्यों न लगते! उन्हें चाय, पानी या खाने के लिए कुछ चाहिए तो फट-से मुझसे कहते जबकि अर्जुन दा ऐसा कि किसी चीज़ की दरकार होने पर भी कुछ नहीं कहता! बस बिस्तर में लेटा रहता! मैं स्वयं उसके पास जाकर पूछती, अर्जुन दा, कुछ ला दूँ, चाय, पानी, खाने को कुछ? वह सिर्फ़ सिर हिलाकर कभी हाँ करता तो कभी ना! उसके बंधु ऐसे नहीं थे। वे मुझे अपने जैसा मानते थे और मैं भी उन्हें अपना ही समझती थी। उन दोनों में भी सुखदीप दा कम बातचीत करने वाला था। मुझे लगता वह शरमाता है। रमण दा दूसरी तरह का था। वह इस घर को बिलकुल अपना समझकर रहता था। वह मुझे काफ़ी कुछ सिखाता भी। खाने की कई चीज़ें बनाना मैंने उससे सीखा। वह मुझसे मेरे बच्चों के बारे में भी बातें करता। वह कहता, देखो, अभी वे छोटे हैं, अभी उनका शैतानी करने का समय है। तुम्हें थोड़ा सावधान रहना होगा, उनकी पढ़ाई-लिखाई पर नज़र रखनी होगी। उन्हें सब समय खेलने मत देना, नहीं तो उनका पढ़ना-लिखना चौपट हो जाएगा। रमण दा पहले सोचता था कि मेरे कोई लड़की नहीं है, तीनों बच्चे लड़के हैं! मेरी लड़की का खेलना-कूदना धीरे-धीरे कुछ दूसरी तरह का होता जा रहा था और कभी-कभी वह लड़कियों के कपड़े भी पहनने लगी थी। रमण दा की भूल उस दिन दूर हुई जब उसने मेरी लड़की को एक गुड़िया लिए खेलते देखा। उसने तातुश से पूछा, बेबी का यह लड़का है या लड़की? इसके हाथ में तो गुड़िया है! तातुश बोले, क्यों, तुम्हें मालूम नहीं? यह तो बेबी की लड़की है! रमण दा ने तब हँसकर कहा, तभी तो! और मैं तो समझ बैठा था कि यह भी लड़का ही है!

रमण दा और सुखदीप दा के आने से घर में थोड़ी चहल-पहल बढ़ी थी लेकिन कुछ ही समय के लिए, क्योंकि जल्दी ही उन दोनों ने काम पर जाना शुरू कर दिया। इस बीच मेरा बड़ा लड़का भी मेरे पास से चला गया क्योंकि उसे एक ऐसे

घर में तातुश ने काम दिला दिया था जहाँ साहब लोगों ने उसे पढ़ाने का भरोसा दिलाया था। मेरा छोटा लड़का और लड़की भी पढ़कर देर से घर लौटते क्योंकि अब वे बड़े सरकारी स्कूल में जाने लगे थे। अर्जुन दा, रमण दा और सुखदीप दा काम पर से लौटकर फ़ौरन सोने चले जाते। तातुश ने एक दिन मुझसे कहा, तुम बच्चों को लेकर रोज़ पार्क में थोड़ा घूम आ सकती हो। बच्चे वहाँ खेलेंगे और तुम्हारा मन भी बहलेगा। उनकी बात मान मैं रोज़ शाम को बच्चों के साथ वहाँ जाने लगी। पार्क में बहुत सी बंगाली औरतें आती थीं। वे वहाँ उन घरों के बच्चों को घुमाने लाती थीं जहाँ वे काम करती थीं। उनमें से कई मुझे देख मेरे पास आतीं और कुछ इस तरह की बातें पूछतीं, तुम बंगाली हो?, तुम्हारा घर कहाँ है?, तुम यहाँ अकेली रहती हो?, तुम्हारा स्वामी कहाँ रहता है?, वह तुम्हारे साथ नहीं रहता? वहाँ कई जवान लड़के भी आते और उनमें बंगाली भी होते। वे भी मुझसे बातचीत करना चाहते और मौका न मिलता तो मेरे बच्चों को बुलाकर उनसे बातें करते। कोई यदि स्वयं आए और मुझसे बात करना चाहे तो उससे बात न करना कैसे संभव है! फिर भी ऐसे लोगों से मैं अधिक बातें नहीं करती और न ही अपने बारे में कुछ बताती क्योंकि बात करने के पीछे उनका आशय क्या है, यह मैं समझ जाती। तातुश ने भी मुझसे कह रखा था कि जब भी कभी मैं बाहर घूमने निकलूँ तो अनजान लोगों से ज़्यादा बातें न करूँ। तातुश ने ठीक ही कहा था। मैं भी वैसा ही सोचती थी और देखती भी कि लोग बातों-बातों में ऐसी-ऐसी बातें पूछने लगते जिनके जवाब देने की मेरी एकदम इच्छा नहीं होती। बीती-पुरानी बातें फिर से मन में लाना मुझे अच्छा नहीं लगता। यह सब देख-सुनकर अब मेरी बाहर निकलने की ही इच्छा नहीं होती लेकिन बच्चों की खातिर जाना ही पड़ता।

एक दिन पार्क में मैंने एक लड़की को एक बच्ची के साथ देखा। उसे मैं पिछले कुछ दिनों से देख रही थी। उसके साथ वहाँ कोई बातचीत नहीं करता था। वह बच्ची को लेकर आती और उसी के साथ खेल-खालकर चली जाती। वह पार्क में आती तो कुछेक लड़के उसे देखकर आपस में हँसी-मज़ाक करते। वह किसी की ओर देखती तक नहीं। वह देखने में नेपालियों जैसी थी लेकिन उस बच्ची से

वह बांग्ला में बातें करती थी जिससे मुझे लगता कि वह बंगाली हो सकती है। उसकी वयस बीस-बाइस की रही होगी और साफ़ मालूम देता था कि उसका ब्याह नहीं हुआ है। उसे देखकर मुझे बहुत माया होती। मैं सोचती कि इतनी बड़ी लड़की को काम के लिए अकेले इतनी दूर क्यों आना पड़ा होगा! मैंने उसे आवाज़ देकर बुलाया तो वह खुशी-खुशी मेरे पास आकर खड़ी हो गई। मैंने उसका हाथ पकड़ उसे अपने पास बिठा लिया और पूछा, तुम क्या बंगाली हो? उसने हाँ कहा और फिर नाम पूछने पर उसने अपना नाम सुनीति बताया। उस दिन से उससे मेरा अच्छा मेल-जोल हो गया और हम एक-दूसरे से रोज़ पार्क में मिलने लगे। किसी दिन न मिल पाने से हम दोनों उदास हो जाते। सुनीति ने बचपन में ही अपने मा-बाबा को खो दिया था। जिस दिन उसका जन्म हुआ था उसी दिन उसकी मा नहीं रही थी और जब वह एक वर्ष की हुई तो उसके बाबा की मृत्यु हो गई थी। उसे उसके मामा और दीदीमा[1] ने पाल-पोसकर बड़ा किया था। बचपन में मा के न रहने से कितना कष्ट होता है वह मैं जानती हूँ! सुनीति जिस दिन अपने घर चली गई उसके एक दिन पहले पार्क में मिली थी और तब तक यह मालूम नहीं था कि वह अगले ही दिन चली जाएगी। उसने मुझसे कहा था, तुम कल अपना पता लिखकर ले आना और मैं भी अपना पता तुम्हें दे दूँगी। मैं अगले दिन अपना पता लेकर पार्क गई लेकिन वह नहीं आई। वह चली गई है, यह बात उस समय भी मेरे मन में नहीं आई थी। उसके अगले दिन भी मैंने उसे नहीं देखा। दो दिन बाद देखा कि जिस बच्ची को लेकर वह आया करती थी वह बच्ची अपनी मा के साथ आई है। तब मुझे लगा कि वह चली गई है। मैंने सोचा उसे शायद मुझसे मिलने का मौका नहीं मिला। वह कर भी क्या सकती थी! जिनके यहाँ रहती थी उन्हीं के कहने पर तो उसे चलना था।

सुनीति के न रहने से पार्क में अब मेरा मन नहीं लगता। मैंने वहाँ जाना छोड़ दिया। जितना समय मैं वहाँ बिताती थी उतना अब मैं लिखने-पढ़ने में बिताने लगी।

1. *नानी*

अब तक जितना मैं लिख चुकी थी उसे तातुश ने फ़ोटो-कॉपी करा के अपने एक बंधु के पास कोलकाता भेज दिया था। तातुश हठात् एक दिन मुझसे बोले, बेबी, तुम्हारी चिट्ठी आई है। मैं अवाक् हो उनकी ओर देखती रही और फिर बोली, मेरी चिट्ठी! मुझे चिट्ठी भेजने वाला तो कोई नहीं! उन्होंने बताया कि चिट्ठी कोलकाता से उनके एक बंधु ने भेजी है। मैंने कहा, सुनाइए न, देखूँ क्या लिखा है उन्होंने! तातुश ने मुझसे बैठ जाने को कहा और फिर चिट्ठी पढ़कर सुनाने लगे, प्रिय बेबी, मैं बता नहीं सकता तुम्हारी डायरी पढ़कर मुझे कितना अच्छा लगा! मैं जानना चाहता हूँ कि इतना अच्छा लिखना तुमने कैसे सीखा। तुम्हारा लेखन उत्कृष्ट है। तुम्हारे तातुश ने सचमुच ही एक हीरा खोज निकाला है! मैं बहुत लज्जित हूँ कि तुम्हें बांग्ला में नहीं लिख सकता। मैं बांग्ला पढ़ सकता हूँ, लिख नहीं सकता। मैं तुम्हारे तातुश से एक वर्ष बड़ा हूँ। इस वयस में भी तुम्हें चिट्ठी लिखने के लिए बांग्ला लिपि सीखने की इच्छा होती है पर वह अब संभव नहीं। तुम कुछ किताबें पढ़ो और तातुश के पास से बांग्ला अभिधान[1] लेकर रोज़ उसे पलटा करो। तुम्हारी कहानी जानने की मेरी बहुत इच्छा होती है। यहाँ मेरे जिन-जिन बंधु-बांधवों ने तुम्हारी डायरी पढ़ी है वे सभी उसे चमत्कार लेखन मानते हैं। मेरे

1. शब्दकोश

एक बंधु ने कहा है कि वह तुम्हारी रचना को किसी पत्रिका में छपाने की व्यवस्था करेंगे लेकिन उसके पहले तुम्हें अपनी कहानी को किसी एक मोड़ तक पहुँचाना होगा। आशा करता हूँ तुम कभी लिखना नहीं छोड़ोगी। यह बात किसी भी दिन मत भूलना कि भगवान ने इस पृथ्वी पर तुम्हें लिखने को भेजा है। आशीर्वाद के साथ यहीं समाप्त करता हूँ। चिट्ठी सुन कर मैं अवाक् रह गई मैंने ऐसा क्या लिखा है जो उन लोगों को इतना अच्छा लगा! उसमें अच्छा लगने की तो कोई बात नहीं! फिर मेरी लिखावट भी खराब है और लिखने में भूलें इतनी कि उसका कोई ठिकाना नहीं! फिर भी उन्हें अच्छा लगा तो क्यों! मेरी कुछ समझ में नहीं आया। मैंने तातुश से पूछा कि मैंने जो लिखा है वह उन्हें इतना अच्छा क्यों लगा तो तातुश बोले, वह तुम नहीं समझोगी। मैंने कहा, मैं सचमुच ही कुछ नहीं समझती। भगवान ने समझने की क्षमता ही नहीं दी मुझे, लेकिन मै समझना चाहती हूँ! तातुश ने कहा, तुम्हें इन सब बातों को लेकर अभी माथा–पच्ची करने की ज़रूरत नहीं है। तुम अपना काम किए जाओ। बस, लिखो और पढ़ो। उसी से सब कुछ अपने आप ही तुम्हारे दिमाग में घुस जाएगा।

तातुश की बात मैं अनसुनी न करती तो क्या करती! जैसे मुझे घर में करने को कुछ और था ही नहीं! घर में अर्जुन दा, रमण दा और सुखदीप दा तो थे ही, उनके बंधु समित दा, रजत दा, राहुल दा का भी आना–जाना लगा ही रहता था! वे सब भी तो मुझे चाहते थे और मेरे साथ तातुश जैसा ही व्यवहार करते थे। ऐसे में मैं उन्हें खिलाने–पिलाने की व्यवस्था छोड़ किताब–कॉपी लेकर कैसे बैठ सकती थी! एक दिन भूल से तातुश की बात मान दिन ही में उनसे अपने लिखने–पढ़ने की बातें करने में लग गई तो एक कांड घट गया। रमण दा उस दिन काम पर से लौटा तो उसे बहुत भूख लगी हुई थी। जल्दी–जल्दी हाथ–मुँह धोकर वह खाने बैठ गया। खाने की प्लेट में कोई गंदगी न पड़ जाए या मक्खी–वक्खी न बैठ जाए इसलिए मैंने उसे उलटा कर रख दिया था। भूख के मारे रमण दा ने इसका खयाल नहीं किया और सब सब्ज़ियाँ उस पर ले लीं। उन सब्ज़ियों में एक गाढ़ी तरी वाली सब्ज़ी थी। उसने जैसे ही रोटी लेकर खाना शुरू किया तो देखा कि तरी प्लेट से

नीचे गिरी जा रही है! वह खाना छोड़, अवाक् हो उसे देखने लगा। कुछ क्षण बाद उसकी समझ में आया कि वह उलटी प्लेट में खाना खा रहा है! वह वहीं बैठा, न जाने क्या सोच-सोचकर खूब हँसने लगा। मैंने तातुश से पूछा, रमण दा किसके साथ बातें कर हँस रहा है? तातुश बोले, और कौन है वहाँ? मैंने कहा, और तो कोई है नहीं उस कमरे में! और इतना कहकर मैं वहाँ चली गई और देखा कि रमण दा हँसे ही जा रहा है। मैंने उससे पूछा, क्या हुआ रमण दा? वह कुछ न कह बस हँसता रहा। मैंने फिर पूछा, क्या हुआ, बताओ तो सही? वह हँसते-हँसते बोला, बेबी, देखो मैं कैसे खा रहा हूँ! मैंने देखा तो हँसी के मारे मेरा बुरा हाल हो गया। हँसते-हँसते ही आकर मैंने तातुश को बताया कि ज़ोर की भूख लगी होने से रमण दा ने बिना अपनी प्लेट की ओर देखे उलटी प्लेट में ही खाना ले लिया। वह भी सुनकर हँसने लगे। वह हम लोगों की तरह नहीं हँसते थे। उनकी हँसी उनकी अपनी तरह की थी। धीरे-धीरे उन लोगों का हँसना बंद हो गया लेकिन मेरी हँसी थम नहीं रही थी। यह देखकर तातुश बोले, बेबी, तुम क्या हँसती ही जाओगी! खाली हँसने से ही सब हो जाएगा? मेरे बंधु की चिट्ठी कितने दिनों से आकर पड़ी हुई है, उसका जवाब तुम्हें नहीं देना होगा? मैंने कहा, चिट्ठी! यह चिट्ठी-विट्ठी लिखना मुझसे नहीं होगा। तातुश बोले, क्यों नहीं होगा? तुमसे जैसे बने, वैसे ही लिखो। लिखते-लिखते ही सब ठीक हो जाएगा।

मैं सोच में पड़ गई कभी किसी को चिट्ठी-विट्ठी लिखी नहीं। यदि लिखे भी तो बस जैसे-तैसे दूसरों के लिए कुछ प्रेम-पत्र! कुछ समझ में नहीं आता कैसे लिखूँगी, क्या लिखूँगी। कितना गलत लिखूँगी, कितना सही, इसका भी तो कोई ठिकाना नहीं! मैंने तातुश से पूछा, मैं उन्हें क्या बोलकर लिखूँगी? तातुश बोले, यह तुम्हीं सोचकर देखो। बस इतना ध्यान रखना कि वह मुझसे एक वर्ष बड़े हैं। मैंने कहा, मैं उन्हें जेठू[1] बोलकर लिखूँगी। तातुश बोले, तुम्हारी जैसी मरज़ी। मैंने जेठू बोलकर ही अपनी चिट्ठी लिखी। चिट्ठी लिखने का सिर-पैर मैं जानती नहीं थी फिर

1. *पिता के बड़े भाई/ ताऊ*

भी जैसे बन पड़ा लिखा। उस चिट्ठी के जवाब में जेठू ने लिखा, प्रिय बेबी, तुम्हारी चिट्ठी कई दिन पहले मिली थी। क्या लिखूँ, सोचते-सोचते इतनी देर हो गई। चार-पाँच दिन हुए मैं यहाँ के किताबों के बाज़ार गया था। वहाँ बांग्ला किताबें देखकर इच्छा हुई थी कि सारा बाज़ार उठाकर तुम्हारे पास भेज दूँ। लोग वहाँ मछली की तरह किताबें खरीद रहे थे और मैं अवाक् हो देख रहा था! तुम्हारी रचना का दूसरा खंड पूरा हो गया, जानकर बहुत खुशी हुई। तुमने यह बिलकुल ठीक लिखा है कि तुम्हारी रचना को लेकर तुम्हारे तातुश और मैं बहुत चिंतित हैं। चिंता का कारण यह है कि तुम्हारी किताब कैसे छपे। आशापूर्णा देवी का पाखिर खाँचा, खाँचार पाखि कैसा लग रहा है? तुम्हें तातुश ने ज़रूर बताया होगा कि आशापूर्णा देवी घर के सारे काम-काज निबटाकर उस समय चोरी-चोरी लिखती थीं जब सब लोग सो जाते थे! उन्होंने केवल बांग्ला ही पढ़ी थी और घर से बाहर भी वह बहुत कम निकली थीं। मैं और तातुश, दोनों ही आशापूर्ण देवी की लिखने-पढ़ने की दुनिया की काफ़ी खबर रखते हैं जबकि हम में उनकी कानी उँगली बराबर भी लिखने की क्षमता नहीं है! तुम दूसरी आशापूर्णा देवी हो सकती हो, यह बात मेरे मन में बार-बार आती है। तीसरा खंड कितना आगे बढ़ा? मेरा प्यार लो—तुम्हारा जेठू।

जेठू इसी तरह मेरा उत्साह बढ़ाते थे। अकेले जेठू ही ऐसा करते हों, यह बात नहीं थी। और भी कई लोग थे। दिल्ली में जेठू और तातुश के एक बंधु रमेश बाबू थे। मैं जो-जो लिखती वह सब तातुश उन्हें फ़ोन पर सुनाते। एक दिन फ़ोन पर बात करने के बाद वह मुझसे बोले, देखो, तुमने यह जो लिखा है वह मेरे बंधु को बहुत-बहुत अच्छा लगा, ऐनि फ्रैंक की डायरी की तरह! मैंने पूछा, यह ऐनि फ्रैंक कौन है? तातुश ने तब मुझे उसके बारे में बताया और एक पत्रिका निकालकर उसमें से उसकी डायरी के कुछ अंश पढ़कर सुनाए। सुनकर उस लड़की से मुझे बहुत माया हुई।

शर्मिला दी भी मेरा उत्साह बढ़ाती थीं। वह मेरी ही वयस की थीं और जेठी की बंधु थीं। वह कोलकाता ही में कहीं पढ़ाती थीं। उनकी चिट्ठियों से मालूम पड़ता कि वह मुझसे कितना स्नेह करती थीं। वैसा स्नेह मुझे और किसी से नहीं मिला। मैं सोचती कि सचमुच इतने दिनों बाद मुझे एक सहेली मिली। मैंने उन्हें तब तक

देखा नहीं था। उनकी चिट्ठियाँ पढ़कर बार-बार इच्छा होती कि उनके साथ बातें करूँ, हँसूँ, खेलूँ, यह करूँ, वह करूँ! उनसे पूछूँ, शर्मिला दी, हम एक-दूसरे से कब मिल सकेंगे? कभी मिल भी सकेंगे या नहीं? मिलने पर मैं तुम्हें धन्यवाद कैसे दूँगी?

एक दिन घर में एक आलमारी की चीज़ें पोंछते समय मैंने वहाँ एक फ़ोटो-ऐलबम देखा। मैं उसे खोलकर तसवीरें देखने लगी। उसमें अर्जुन दा के बंधुओं की तसवीरें थीं। एक तसवीर में जेठू थे, उनकी एक तरफ़ शर्मिला दी और दूसरी तरफ़ अर्जुन दा। एक और तसवीर में जेठू के पास शर्मिला दी और सुखदीप दा बैठे थे। जेठू और शर्मिला दी को तब तक केवल उन्हीं तसवीरों में देखा था, मिली कभी नहीं थी। उन्हें अपनी आँखों से देखने की बहुत इच्छा होती। शर्मिला दी जब मुझे चिट्ठी भेजती तो साथ में मेरे जवाब देने के लिए तरह-तरह की सुंदर आकृतियों में सादे कागज़ काटकर भी रख देतीं। शर्मिला दी लेखिका थीं। उनकी एक किताब छप चुकी थी और पत्रिकाओं में उनकी कहानियाँ छपती रहती थीं। वह मुझे प्यार करती थीं और मेरे बच्चों के हाल-चाल पूछती रहती थीं। कभी-कभी मैं सोचती कि कहाँ उन जैसी पढ़ी-लिखी लड़की और कहाँ मैं! चिट्ठियों में हम जो बातें करते हैं वह शायद मिलने पर न हों। फिर सोचती कि मिलने पर शायद हम दोनों और भी अधिक बातें करें!

मेरा उत्साह बढ़ाने वालों में जेठू के एक बंगाली बंधु, आनंद भी थे। जेठू के घर पर मेरी किताब का पहला खंड पढ़कर उन्होंने मुझे लिखा, आपकी रचना मुझे

अच्छी लगी। स्वयं के जीवन की विभिन्न स्मरणीय घटनाओं को सहज भाव से लेखन के माध्यम से सामने रखना बहुतों के निकट शायद संभव नहीं। अपनी इस सुंदर कोशिश को कभी बंद न करें। अभ्यास और कोशिश से संभव है कि आप हमें कभी कुछ असाधारण दे सकें। नारी-अत्याचार, असुविधा, दुर्दशा, और उनके आर्थिक कष्ट के बारे में भी आप सोचें और लिखने की चेष्टा करें। मेरी शुभकामना आपके साथ है। इस चिट्ठी के साथ आनंद बाबू ने मुझे अपना एक लेख भी भेजा था। उस लेख को पढ़कर मुझे अच्छा लगा था। वह पूरा का पूरा मेरी समझ में आ गया हो, ऐसी बात नहीं थी। मेरे कहने पर तातुश ने वह मुझे समझाया था फिर भी कुछ दिमाग में घुसा और कुछ नहीं घुसा। इतने सारे लोगों के उत्साहित करने, साहस दिलाने के बाद भी मैं सोचती रहती कि कभी कुछ ठीक से लिख भी पाऊँगी या नहीं।

इसी बीच एक दिन मेरे बाबा सबेरे-सबेरे आ पहुँचे। मैं उस समय किचेन में थी। खिड़की से मैंने एक व्यक्ति को साइकिल से उतरते देखा। मैं ठीक से पहचान नहीं पाई। उसने घंटी बजाई तो काफ़ी देर बाद मैं बाहर निकली। मुझे देखकर बाबा ने पूछा, कैसी है, बेटा? मैं बोली, बाबू, आपके शरीर का यह हाल कैसे हो गया? बाबा बोले, कहाँ कुछ भी तो नहीं हुआ! बच्चे कैसे हैं? मैंने कहा, ठीक हैं, सब ठीक हैं, स्कूल गए हैं। मैं तातुश के पास दौड़ी गई और बताया कि मेरे बाबा आए हैं। तातुश बोले, उन्हें घर में बिठाओ। अपने बाबा के लिए कुछ खाना-वाना तैयार करो। बाबा को मैं अपने कमरे में ले गई और पूछा, चाय बनाऊँ? वह बोले, नहीं रहने दो। इतनी गरमी में चाय! मैंने जल्दी से एक गिलास शरबत बनाकर उन्हें दिया। गिलास हाथ में लिए वह बोले, तू भी थोड़ा ले, बेटा। मैंने कहा, नहीं बाबू, मैंने अभी-अभी चाय पी है। मा कैसी है? वह बोले, ठीक है, तुम्हारी बहुत याद करती रहती है। मैंने सोचा, करेगी क्यों नहीं! दो वर्ष जो हुए जा रहे हैं और अभी तक दूरी के कारण मिलना-जुलना नहीं हो सका। अभी दो-एक दिन के लिए वहाँ चली जाऊँ तो शायद वही झगड़े फिर शुरू हो जाएँ! मैं अब और वही सब भोगने को तैयार नहीं। यहाँ आकर इतना तो मैं समझ गई हूँ कि आदमी हो या औरत, सभी अपने पेट की चिंता स्वयं करते हैं और एक

ही जैसा खटते-कमाते हैं। यही समझ पहले आ गई होती तो उसी हिसाब से मैं अपनी व्यवस्था कर लेती और तब शायद मुझे उतना कष्ट नहीं भोगना पड़ता!

बाबा के साथ इधर-उधर की काफ़ी बातें करते-करते मैंने पूछा, कोलकाता की क्या खबर है? मेरा भाई कैसा है? मा कैसी है? बाबा बोले, मा! तेरी मा? तू ने कुछ सुना नहीं लगता है क्यों? बाबा मेरे मुँह की ओर थोड़ी देर देखते रहे। वह शायद सोच रहे थे कि बताने से कहीं यह रोने-धोने न लग पड़े। इसे सच-सच बताना ठीक होगा या नहीं? शायद बता ही देना चाहिए क्योंकि यह तो अभी भी यही सोच रही है कि इसकी मा जीवित है। ऐसे में न बताना तो भूल होगी। बाबा शायद यही सब सोच रहे थे। उन्हें चुप देख मैंने बाबू कहकर उन्हें बुलाया तो वह चौंक गए। मैंने देखा उनकी आँखें भर आई हैं। तब मुझे लगा कि मेरी मा शायद नहीं रही। मेरे मुँह से निकल पड़ा, क्या हुआ, बाबू? मा की तबीयत तो ठीक है? बाबा रुद्ध गले से बोले, तेरी मा! तो छह-सात मास हुए दुनिया छोड़कर चली गई! तेरी मा नहीं है। क्यों! तेरा दादा तो वहाँ गया था, उसने तुझे नहीं बताया? मैं बोली, नहीं तो! मुझे किसी ने नहीं बताया। मैं थोड़ी देर बाबा के सामने सिसक-सिसककर रोती रही। और मैं कर भी क्या सकती थी। एक बार सुना था कि अस्पताल में भर्ती है। मुझे लगता है तभी उसकी मृत्यु हो गई थी। उसके बाद उसकी कोई खबर नहीं मिली। सभी को सारी जानकारी रहती है लेकिन मुझे कोई कुछ नहीं बताता। मेरे दादा, बऊदी, भाई कोई बहुत दूर तो रहते नहीं थे! रिक्शे में दस रुपया भाड़ा लगता। फिर भी कोई एक बार भी मुझे बताने नहीं आया! बीच में मैं कई बार वहाँ गई भी लेकिन तब भी किसी ने कुछ नहीं कहा! मैं हर समय सोचती रहती थी कि जैसे भी हो एक बार मा के पास ज़रूर जाऊँगी। इतने दिन यही सोचती आ रही थी और अब सुनने को मिला मेरी मा हम लोगों को छोड़ चली गई! मुझे पता चला था कि मा जब अस्पताल में भर्ती थी तब मेरे छोटे भाई ने बाबा के पास जाकर उनसे कहा था कि वह उन्हें मा से मिलाने ले जाएगा। बाबा नहीं गए। वह क्यों जाते! उन्हें जाने की दरकार ही क्या थी! उन्हें किस चीज़ का अभाव था। बाबा का जाना उचित होता। मुझे लगता है वह जानते थे कि मा नहीं बचेगी, फिर भी नहीं गए।

मेरे भाई को वैसे ही घूम-फिरकर लौट आना पड़ा। मेरे खयाल से बाबा ने भूल की। अंतिम भेंट की तरह एक बार मा को देख आ सकते थे लकिन नहीं गए। मा का क्रिया-कर्म मेरे भाई को अकेले ही करना पड़ा। दादा लोगों को भी काफ़ी बाद में पता चला और मुझे तो अभी-अभी!

बाबा ने पूछा, तेरा बड़ा लड़का कहाँ रहता है? मैंने बताया कि यहीं पास में है तो वह बोले, चलो थोड़ा देख आऊँ। मैं बाबा को लेकर वहाँ गई। बेल बजाते ही मेरा लड़का बाहर निकल आया और अरे, दादू! कहकर उन्हें प्रणाम किया और बोला, दादू, मेरा बाबू कैसा है? बाबा बोले, तुम्हारा बाबू ठीक है। मैंने साथ चलने को कहा था पर वह नहीं आया, भाई! मेरे लड़के को देखकर बाबा की आँखें भर आई थीं। वह उससे बोले, तुम लोग और भी बड़े होओ, भाई। पहले कैसे परिवेश में थे तुम लोग! अब तुम सबको देखकर बहुत खुशी हुई। मुझसे बाबा ने कहा, तुझे अब कष्ट नहीं होगा, बेटा। तेरा लड़का बड़ा हो रहा है। देखना, एक दिन यही तुझे सुख देगा, बेटा। अभी थोड़ा कष्ट उठा ले, बाद में इसके साथ सुख-शांति से रहेगी। मेरे लड़के से बाबा बोले, दादू भाई, ठीक से रहना और इतना कहकर मेरे साथ लौट आए। बाबा हमारे यहाँ से चलने लगे तो तातुश ने उनसे कहा, आप बेबी की तरफ़ से निश्चिंत होकर जाएँ। बाबा बोले, जब आप जैसे लोगों के पास है तो चिंता की कोई बात नहीं। चिंता करता लेकिन अब नहीं करूँगा क्योंकि मैंने देख लिया कि मेरी लड़की यहाँ खूब अच्छी तरह है।

बाबा चले गए। उन्हें कहीं से पता चल गया था कि मैं कुछ लिख-विख रही हूँ। सुनकर वह बहुत खुश हुए थे। जहाँ पहले वह मेरी कोई खोज-खबर नहीं लेते थे वहाँ अब वह जब-तब फ़ोन पर मेरा हाल-चाल पूछने लगे। वह बार-बार यह भी जानना चाहते कि मेरा लिखना कहाँ तक आगे बढ़ा, खत्म हुआ कि नहीं! वह मुझे अपने यहाँ आने को भी कहते और साथ में यह भी कि यदि मैं रुकना न चाहूँ तो लौट आ सकती हूँ। मेरी जाने की इच्छा नहीं होती।

बाबा के जाने के बाद कई दिन मेरा मन बहुत खराब रहा। मैं पछताती कि मेरी मा मर गई और मैं आँखों से उसे देख तक नहीं पाई! मुझे बाबा के गिरते स्वास्थ्य

को लेकर भी चिंता लगी रहती। इसी बीच जेठू और शर्मिला दी की कई चिट्ठियाँ भी आ पहुँची थीं और उनके जवाब देने की चिंता अलग से लगी रहती। चिट्ठियों के जवाब देने से दोनों खुश होंगे और मेरा मन भी बहल जाएगा, यह सोचकर एक दिन सारी चिट्ठियाँ लेकर मैं बैठ गई। जवाब देने से पहले उन चिट्ठियों को एक बार फिर पढ़ लेना ज़रूरी समझ कर मैंने पहले जेठू की चिट्ठियाँ उठाईं और किसी कहानी की तरह उन्हें पढ़ने लगी... तातुश ने तुम्हें शब्द-कोश की मदद लेने को ठीक ही कहा है। मेरी भी यही राय है। चिट्ठी लिखने में भूलें तो होंगी ही लेकिन क्या इसी से तुम चिट्ठी लिखना बंद कर दोगी? बार-बार जिज्ञासा करना कोई बुरी बात नहीं, जिज्ञासा होने से ही हम लिख पाते हैं। तुम्हारी कहानी क्या इधर सोयी पड़ी है, तुम्हारे तातुश की तरह?... नव-वर्ष में खूब लिखो और मल्लेश्वरी की तरह मोटी-सोटी हो जाओ, यही मेरी कामना है।... तुम्हारा लेखन मुझे बहुत अच्छा लग रहा है और मुझे लगता है कि दूसरों को भी अच्छा लगेगा। मैं अपने बंधु, आनंद के कहने पर उनका यह लेख तुम्हें भेज रहा हूँ।... तुम्हारे लेखन को लेकर तुम्हारे तातुश और तुम्हारे जेठू, दोनों के ही सोचने-विचारने का कोई अंत नहीं। सबसे अधिक खुशी की बात यह है कि पहले की तरह अब तुम्हें लिखने में कष्ट नहीं हो रहा है। आशापूर्णा देवी की कोई नयी किताब पढ़ी क्या?... तुम्हारी लिखावट पहले मुझे काफ़ी कष्ट देती थी। अब कष्ट देने की बात तो दूर, तुम्हारी लिखावट देखकर बहुत खुशी होती है। पढ़ते हुए एक बार भी तुम्हें डाँटने की इच्छा नहीं होती बल्कि बार-बार शाबाश, बहुत अच्छा कहने की इच्छा होती है। भूलों की चिंता करने लगो तो एक लाइन भी लिखी नहीं जा सकती इसलिए उनकी चिंता किए बिना लिखना होगा। बाद में अपना लिखा स्वयं ही सुधार लेना होगा। इसके बाद जिन लोगों का काम ही है लिखना-पढ़ना, उनसे इसे कुछ और सुधरवाने की बारी आएगी। लिखने बैठने से ही लिखा जा सकता है, यह अभिज्ञता तुम्हें निश्चित ही हो गई है। तुम्हारे तातुश ने तुमसे ठीक ही कहा है कि भूल होती है तो हो, फिर भी लिखो। जेठू की जितनी चिट्ठियाँ आतीं उतनी मेरी इच्छा होती कि लिखूँ, और भी लिखूँ।

शर्मिला दी मुझे हिंदी में चिट्ठी लिखती थीं। उनकी चिट्ठियाँ सुनकर मुझे बहुत अच्छा लगता। उनकी चिट्ठियाँ कुछ और ही तरह की होतीं। मैं सोचती कि उनके यहाँ भी तो घर के काम के लिए कोई लड़की रखी गई होगी। क्या उसके साथ भी वह वैसा ही व्यवहार करती होंगी जैसा मेरे साथ! मुझे तो वह किसी के घर काम करने वाली लड़की की तरह नहीं देखतीं और चिट्ठियाँ भी ठीक उसी तरह लिखतीं जैसे अपनी किसी बांधवी को! तातुश उनकी चिट्ठियाँ पढ़कर सुनाते तो अपनी टूटी-फूटी बांग्ला में मैं उन्हें लिख लेती। कभी जब मेरा मन खराब होता तो उनकी यह चिट्ठियाँ मुझे आह्लादित कर देतीं... बेबी, एक बार सोचकर देखो कि अपने बाबा को तुम जैसा समझती हो, वैसे वह क्यों हैं? इसका कारण क्या है! थोड़ा उनकी तरफ़ से भी सोचो जिन्हें तुम माफ़ भले ही न कर सको। बेबी, जो हमें अच्छे नहीं लगते उन्हें भी माफ़ किया जा सकता है और शायद वैसा करना ही भला है।... यदि तुम यहाँ आओ तो हम दोनों खूब सजेंगे और फिर खूब नाचेंगे। तुम्हें सजना अच्छा लगता है कि नहीं? मुझे तो कभी-कभी अच्छा लगता है। तुम मेरे लिए सजना और मैं तुम्हारे लिए सजूँगी।... हम दोनों जब एक दूसरे से मिलेंगे तो जी-भरकर हँसेंगे। यदि हँसने की कोई बात न होगी तब भी हँसेंगे।... बेबी, तुम उस समय क्या अवाक् नहीं रह जातीं जब कोई तुम्हारा लिखा कुछ पढ़कर कहता है कि बहुत अच्छा लिखा है? और तुम क्या कभी यह सोचती हो कि इतनी कठिनाई, इतने कष्ट में बीता तुम्हारा जीवन लिखना शुरू करने के बाद से इतना सुंदर कैसे हो गया?

मुझे यह बात बड़ी मज़ेदार लगती कि शर्मिला दी ने मेरे सजने-धजने के बारे में पूछा क्योंकि सजना-धजना मुझे कभी अच्छा नहीं लगा। मैंने कितनी ही लड़कियों, बहुओं को देखा था जो कहीं घूमने जाने की बात उठी नहीं कि सिंदूर की डिब्बी, पाउडर का डिब्बा, आयना, कंघी और न जाने क्या-क्या लेकर सजने बैठ जातीं। साड़ी पहनतीं तो अपनी किसी सहेली को बुलाकर पूछतीं, ए, देखो तो ठीक से पहनी कि नहीं? अगर सहेली ने उनके मन की बात नहीं कही तो ऐं! ठहरो कहकर साड़ी को फिर दस बार खोलतीं, पहनतीं! कोई-कोई अपने स्वामी से

पूछतीं, क्यों जी, कौन सी साड़ी पहनना ठीक रहेगा? स्वामी यदि कहता, यह साड़ी पहनो, इसमें बहुत अच्छी दिखोगी, तो उस साड़ी को पहने वे मुसकुराती हुई जल्दी-जल्दी कमरे में चली जातीं और फिर साड़ी पहन स्वामी के सामने आ खड़ी होतीं और चाहतीं कि वह एक बार फिर कहे, तुम कितनी सुंदर लग रही हो! सिर्फ़ यही नहीं, वे चाहतीं कि और लोग भी कहें, देखो, देखो, कितनी सुंदर लग रही है! मैं तो देख कर अवाक् रह जाती कि औरतों को साड़ी-गहने से इतना मोह है! इनके लिए इतना लालच, इतना लोभ! मैं उन्हें देखती कि ओठों पर, चेहरे पर ढेर सारा रंग पोत लिया और चल पड़ीं अपने स्वामी या किसी और आदमी के साथ घूमने! यह सब चीजें औरतें न जाने क्यों इतना पसंद करती हैं! मुझे यह सब एकदम ही अच्छा नहीं लगता। मुझे बचपन से ही अधिक सजना-धजना अच्छा नहीं लगता था। बचपन में मेरी दीदी मुझे पकड़ कर जबरदस्ती मेरी कंघी करती और बाल बाँधती। सहेलियों के साथ कहीं जाना होता तो सहेलियाँ ही कह-कहकर मुझे सजातीं-वजातीं। ब्याह के बाद भी इन सब चीज़ों का शौक मुझे नहीं हुआ। कहीं जाना भी होता तो बस जैसे-तैसे कंघी कर, मांग में सिंदूर लगा चल पड़ती। इस पर भी पाड़े की औरतें मुझे देखकर जलतीं। वे अगर अब मुझे देखतीं तो और भी जलतीं और इसको-उसको बुला, आपस में खुसर-फुसर करने लग जातीं क्योंकि साड़ी की जगह मैं शलवार-सूट जो पहनने लगी थी!

यहाँ आकर इस तरह की तुच्छ बातों से मैं बच गई यहाँ मुझे सबका स्नेह मिलता था। तातुश के लड़के विदेश से लौटते तो मेरे लिए कुछ न कुछ लेकर आते। मामा, माने अर्जुन दा की मा, आतीं तो वह भी मुझे कुछ न कुछ ज़रूर देतीं। मैं सोचती कि इन लोगों का इतना प्यार सँभाल भी पाऊँगी या नहीं! अब मुझे आश्चर्य होता है जब कोई कहता है कि वह इसके या उसके बिना नहीं रह सकता, जबकि पहले मैं भी सोचती थी कि अपने दुर्गापुर के कुछ बंधुओं को छोड़कर मैं नहीं रह सकूँगी। यह सब बस कहने भर की बातें होती हैं। जो पहले कहा करते थे कि इसके या उसके बिना नहीं रह सकेंगे, वे आज उनके बिना बड़े मज़े में हैं! मैं भी कुछ दिन बहुत उदास रही थी, जब अपने बंधुओं को छोड़कर आना पड़ा

था। धीरे-धीरे सब ठीक हो गया। बच्चों को पाल-पोसकर बड़ा करने की तरफ़ मैं अधिक ध्यान देने लगी और उसमें मुझे इतना सुख मिलने लगा कि अपने बंधुओं से बिछुड़ने के दुख की जगह मैं अब मानने लगी थी कि उनमें से कोई भी मुझसे मिलने न आए। मैं अपने बाल-बच्चों में मगन थी और इस बात से बहुत खुश थी कि उनकी पढ़ाई-लिखाई ठीक चल रही है। वे अब न तो पहले की तरह ज़रा-ज़रा सी बात पर रोने-चिल्लाने लगते, न ही बेमतलब इधर-उधर भटकते। बातें भी अब वे ऐसी करने लगे थे जैसी पहले कभी नहीं करते थे। अभी कुछ ही दिन हुए मैं रात के आठ-नौ बजे अपने बच्चों के साथ छत पर बैठी बातें कर रही थी कि हठात् मेरी लड़की ने पूछा, मा, तुम कभी स्कूल गई हो? मैं अवाक् हो उसकी ओर देखती रही और सोचने लगी कि इतनी ज़रा-सी बच्ची ऐसी बात पूछ रही है! अब भला मैं इसे क्या जवाब दूँ! मैं कुछ बोलती, इसके पहले ही उसने फिर कहा, मा, एक कविता सुनाओ न! मुझे क्या वह सब अब याद था! फिर भी जो दो चार लाइनें मन में आईं, उसे सुना दीं। वह खिलखिलाकर हँस पड़ी और बोली, इतनी बड़ी मा, और स्कूल की कविता सुनाती है! उसकी बात पर मुझे हँसी आ गई और कुछ दुख भी हुआ। मैंने सोचा मेरे बच्चे जब इस बात पर इतना हँस सकते हैं तो उस समय तो और हँसेंगे जब देखेंगे कि मैं हाथ में अखबार लिए बैठी हूँ क्योंकि मेरे हाथ में अखबार पहले कभी तो उन्होंने देखा नहीं।

यहाँ मैं रोज़ सबेरे अखबार देखती थी। अंग्रेज़ी न जानने से उसका सिर-पैर कुछ भी समझ नहीं पाती फिर भी तसवीरें देखकर तातुश से उनके बारे में पूछती। तातुश कहते, तसवीरों के नीचे बड़े-बड़े अक्षरों में जो लिखा है, उसे पढ़ने की कोशिश करो। मैं एक-एक अक्षर बोलती जाती और तातुश हूँ-हूँ करते जाते। जब सारे अक्षर खतम हो जाते तो तातुश पूरे शब्द का उच्चारण कर देते और उसका मतलब भी बता देते। बार-बार पूछने पर कभी-कभी वह उकता जाते क्योंकि वह अपना प्रिय अखबार द हिंदू ठीक से पढ़ नहीं पाते। शायद इसीलिए अखबार हाथ में लिए-लिए वह कहते, बेबी, जाओ, बच्चों को स्कूल नहीं भेजोगी? मैं कहती, हाँ, हाँ, भेजूँगी, अभी टाइम है। वह फिर कहते, कब भेजोगी? देर नहीं हो जाएगी!

जाओ। मैं घड़ी की तरफ़ देखकर उठ पड़ती। बच्चों को स्कूल भेजना ही तो कोई अकेला काम था नहीं। अर्जुन दा के उठने पर उसके लिए कुछ खाना-वाना भी तो बनाना होता। ठंडी रोटी वह खाता नहीं था इसलिए गरम-गरम बनाकर देनी होती। उसे अच्छी-अच्छी चीज़ें खाने का शौक था। चिकेन-विकेन, बिरयानी, पुलाव, कबाब, आलू-पराठा, पुदीना-पराठा, यह सब उसे अधिक पसंद था। साथ में टोमाटो सूप, चिकेन सूप, प्याज सूप जैसा कुछ हो तो और भी अच्छा। मैं उसका खाना उससे पूछकर ही बनाती। लोगों को कुछ बना-बनाकर खिलाना मुझे हमेशा से अच्छा लगता रहा है। मैं जब अपने स्वामी के पास थी तब भी कभी कुछ नया बनाती तो आस-पास के लोगों को भी खिलाती और इस पर से मेरा स्वामी मुझ पर बहुत गुस्सा करता।

लोगों को किताबें देखकर तरह-तरह की चीज़ें बनाकर खिलाना मुझे जितना अच्छा लगता, उतना ही अच्छा अब उपन्यास, कहानी, कविता पढ़ना और अखबार देखना लगने लगा था। अखबार देखते-देखते मुझ पर जैसे उसका नशा सा चढ़ गया था। तातुश उसमें से जो कुछ मुझे बताते वह सब मेरे लिए बिलकुल नया होता और वैसी बातें बार-बार सुनने-समझने के लिए मैं रोज़ सबेरे गेट पर खड़ी हो अखबार आने का रास्ता देखती।

उस दिन सबेरे उठने में मुझे थोड़ी देर हो गई थी। नीचे आई तो देखा तातुश स्वयं ही अखबार लाकर पढ़ रहे हैं। मैं जल्दी-जल्दी किचेन में गई और चाय बना लाई। उन्हें चाय देकर मैंने दूसरा अखबार उठा लिया और उसकी तसवीरें देखने लगी। तातुश बोले, तुम्हारी चाय कहाँ है! जाओ, ले आओ। मैं चाय लेकर खड़े-खड़े पीने लगी तो उन्होंने कहा, खड़ी क्यों हो? बैठ जाओ।

मैं एक कुर्सी पर बैठ गई और चाय का गिलास टेबिल पर रख, अखबार देखने लगी। हठात् तातुश बोले, बेबी, तुम्हें हम लोगों के पास माने, इस घर में आए एक वर्ष हो गया। तुम सोचकर देखो और मुझे बताओ कि तुम्हें कैसा लग रहा है? क्या-क्या तुम्हें अच्छा लगा और क्या बुरा? यहाँ आकर तुमने क्या कुछ सीखा? इतना कहकर तातुश फिर अखबार पढ़ने लगे। बेबी ने सोचा, भला यह भी कोई

पूछने की बात है! उसने उनकी बात का कोई जवाब नहीं दिया। वह जाकर खिड़की के पास खड़ी हो, आकाश की ओर देखने लगी। उसे अपनी मा की याद हो आई। उसकी मा की कितनी इच्छा थी कि उसके बच्चे पढ़–लिखकर अच्छे मनुष्य बनें लेकिन वैसा कहाँ हुआ! लिखना–पढ़ना तो उसका हुआ नहीं था फिर भी उसका महत्व वह ठीक–ठीक समझती थी और जब तक उन लोगों के साथ रही तब तक पढ़ने के लिए उनके पीछे सारे समय पड़ी रहती थी। मा आज होती और उसे पता चलता या स्वयं देखती कि उसकी बेबी आज भी पढ़ना चाहती है या पढ़–लिख रही है तो उसे कितनी खुशी न होती! आकाश की ओर देखती, जैसे वह अपनी मा से कहना चाहती है, मा, तुम एक बार आकर देख जाओ। मैं अभी भी लिखना–पढ़ना चाहती हूँ, अपने बच्चों को पढ़ाकर अच्छा बनाना चाहती हूँ। उन्हें बस तुम्हारा आशीर्वाद चाहिए, मा। वह अपनी मा से बातें कर रही थी और उसकी आँखों से बहते आँसू, छाती भिगोते, फ़र्श पर टपक रहे थे।

गिलास में चाय कब की ठंडी हो चुकी थी। तभी बेबी के कानों में किसी के पैरों की आहट पहुँची और वह चौंक पड़ी। उसने घूमकर देखा अर्जुन दा उठ चुका था और नीचे आ रहा था। उतरते–उतरते ही वह बोला, तुम लोग चाय पी रहे हो! मेरी चाय कहाँ है? वह चाय बनाने किचन में जाने लगी तभी देखा कि किसी ने गेट पर आ बेल बजाई। उसने जाकर देखा कि पड़ोस का लड़का हाथ में एक पैकेट लिए खड़ा है। वह उससे बोला, यह तुम लोगों का है, डाकिया भूल से हमारे यहाँ डाल गया था। उस लड़के से पैकेट ले, उसने आकर तातुश को दे दिया। तातुश ने देखकर कहा, यह तो तुम्हारा है! यह लो। जाकर देखो इसमें क्या है। पैकेट लेकर वह किचन में गई और अर्जुन की चाय का पानी चढ़ाकर उसने पैकेट खोला। पैकेट में एक पत्रिका थी। वह उसे पलटने लगी तो उसमें एक जगह उसने अपना नाम देखा। आश्चर्य से फिर देखा। सचमुच ही उसमें लिखा था, आलो–आँधारि[1], बेबी

1. अँधेरे का उजाला

हालदार! खुशी से उसका मन हिलोरें मारने लगा। मन की ऐसी उथल-पुथल में भी जेठू की वह बात याद आ गई कि आशापूर्णा देवी दिन भर के काम निबटाकर उस समय लिखने-पढ़ने बैठती थीं जब सब लोग सो चुके होते थे। उसने सोचा, जेठू ठीक ही कहते हैं कि घर के काम करते हुए भी लिखना-पढ़ना हो सकता है। हठात् उसकी नज़र चाय के लिए चढ़ाए पानी पर पड़ी जो उबलते-उबलते काफ़ी कम रह गया था। उसने जल्दी-जल्दी चाय बनाकर अर्जुन दा को दी और तब वह नीचे से ही देखो, देखो, एक चीज़! बोलती-बोलती ऊपर अपने बच्चों के पास पहुँची। दोनों बच्चे दौड़कर उसके पास आ गए। उसने उनसे कहा, बताओ तो यह क्या

लिखा है! उसकी लड़की ने एक-एक कर सभी अक्षर पढ़े और बोली, बेबी हालदार! मा, तुम्हारा नाम किताब में! दोनों बच्चे हँसने लगे। उन्हें हँसता देख उसका मन खुशी से और भी भर गया। उसने प्यार से उन्हें अपने पास खींच लिया। उन्हें प्यार करते-करते हठात्, जैसे उसे कुछ याद आ पड़ा। वह बच्चों से, छोड़ो, छोड़ो, छोड़ो, मैं अभी आती हूँ कहकर उठ खड़ी हुई नीचे आते-आते उसने सोचा वह कितनी बुद्धू है! पत्रिका में अपना नाम देख सभी कुछ भूल गई! जल्दी-जल्दी सीढ़ियाँ उतर वह तातुश के पास आई और उनके पैर छू प्रणाम किया। उन्होंने उसके सिर पर हाथ रख आशीर्वाद दिया।

अनुवादक - प्रबोध कुमार

* *पाठ में दिए गए सभी चित्र काल्पनिक हैं*

अभ्यास

1. पाठ के किन अंशों से समाज की यह सच्चाई उजागर होती है कि पुरुष के बिना स्त्री का कोई अस्तित्व नहीं है। क्या वर्तमान समय में स्त्रियों की इस सामाजिक स्थिति में कोई परिवर्तन आया है? तर्क सहित उत्तर दीजिए।
2. अपने परिवार से तातुश के घर तक के सफ़र में बेबी के सामने रिश्तों की कौन-सी सच्चाई उजागर होती है?
3. इस पाठ से घरों में काम करने वालों के जीवन की जटिलताओं का पता चलता है। घरेलू नौकरों को और किन समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इस पर विचार करिए।
4. ***आलो-आँधारि*** रचना बेबी की व्यक्तिगत समस्याओं के साथ-साथ कई सामाजिक मुद्दों को समेटे है। किन्हीं दो मुख्य समस्याओं पर अपने विचार प्रकट कीजिए।
5. ***तुम दूसरी आशापूर्णा देवी बन सकती हो***– जेठू का यह कथन रचना संसार के किस सत्य को उद्घाटित करता है?
6. बेबी की ज़िंदगी में तातुश का परिवार न आया होता तो उसका जीवन कैसा होता? कल्पना करें और लिखें।
7. 'सबेरे कोई पेशाब के लिए उसमें घुसता तो दूसरा उसमें घुसने के लिए बाहर खड़ा रहता। टट्टी के लिए बहार जाना पड़ता था लेकिन वहाँ भी चैन से कोई टट्टी नहीं कर सकता था क्योंकि सुअर पीछे से आकर तंग करना शुरू कर देते। लड़के-लड़कियाँ, बड़े-बूढ़े, सभी हाथ में पानी की बोतल ले टट्टी के लिए बाहर जाते। अब वे वहाँ बोतल सँभालें या सुअर भगाएँ! मुझे तो यह देख-सुनकर बहुत खराब लगता'––अनुवाद के नाम पर मात्र अंग्रेज़ी से होने वाले अनुवादों के बीच भारतीय भाषाओं में रची-बसी हिंदी का यह एक अनुकरणीय नमूना है––उपर्युक्त पंक्तियों को ध्यान में रखते हुए बताइए कि इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं।

चर्चा करें

पाठ में आए इन व्यक्तियों का देश के लिए विशेष रचनात्मक महत्त्व है। इनके बारे में जानकारी प्राप्त करें और कक्षा में चर्चा करें।

श्री रामकृष्ण, रवींद्रनाथ ठाकुर, काज़ी नज़रुल इस्लाम, शरत्चंद्र, सत्येंद्र नाथ दत्त, सुकुमार राय, ऐनि फ्रैंक।

11067CH04

भारतीय कलाएँ

कलाओं की अपनी भाषा होती है जैसे- हम अपने आस-पास के परिवेश, प्रकृति या भावों और विचारों को भाषा मे व्यक्त करते हैं। वैसे ही चित्रकारी, संगीत या नृत्य के माध्यम से भी हम अपने आस-पास और प्रकृति को अभिव्यक्त करते हैं। हम जो कुछ देखते-सुनते हैं उसे किसी न किसी रूप में और नए-नए तरीके से कहना या अभिव्यक्त करना चाहते हैं। समुद्र में उठती गिरती लहरों को देखकर चित्रकार उसे रंगों से सजाता है। चिड़ियाँ की चहचहाहट को गायक स्वरों में सजाता है तो नर्तक मन के भावों को विभिन्न मुद्राओं में सजाता है। कभी

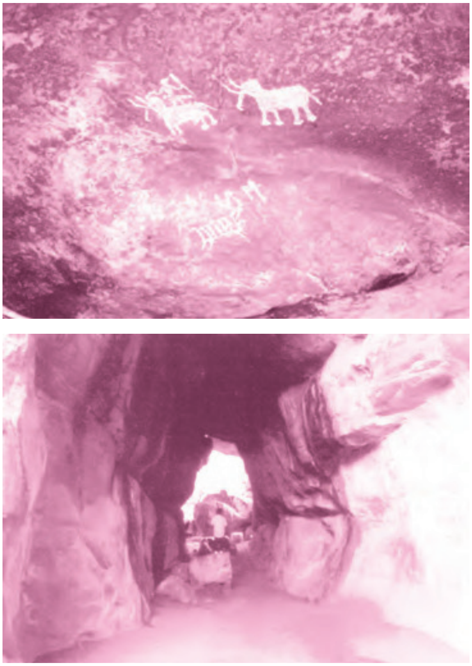

भीमबेटका की गुफा के चित्र

चित्रों में, तो कभी गीतों में, कभी नृत्य में, तो कभी संगीत में यह कहने-सुनने की परंपरा सदियों से चल रही है और आज भी नए-नए तरीकों में लगातार ज़ारी है।

हमारा देश भारत उत्सवधर्मी है। विविधता हमारी पहचान है। विभिन्न संस्कृतियों और विभिन्न त्योहारों के साथ-साथ विविध कलाएँ भी हमारी अनूठी पहचान हैं। आपने देखा होगा कि भारत के अलग-अलग राज्यों की अपनी-अपनी विशिष्ट कलाएँ हैं। आपने यह भी देखा होगा कि हमारी कलाओं को त्योहारों, उत्सवों से अलग नहीं किया जा सकता। ये कलाएँ जन्मोत्सव से लेकर, शादी-ब्याह, पूजा तथा खेती-बाड़ी से भी जुड़ी हैं। मनुष्य के जीवन से जुड़ी होने के कारण ही भारत की ये विशिष्ट कलाएँ विरासत के प्रति हमें उत्साह और विश्वास से भर देती हैं। क्या आपको यह नहीं लगता कि पर्वों-त्योहारों या फिर फसलों से कलाओं का जुड़ाव ही एक ओर इसे केवल मनोरंजन या अलंकरण होने से बचाता है, तो दूसरी ओर यही पहलू, प्राचीन परंपराओं की सतत निरंतरता को बनाए रखता है। वास्तव में यही अतीत और वर्तमान के बीच जुड़ाव की कड़ी भी है।

अगर हम आज पीछे मुड़कर देखें तो पाएँगे कि जनजातीय और लोककला शैलियों के सभी रूपों में एक व्यवस्था भी दिखाई पड़ती है, जो आगे चलकर शास्त्रीय कलाओं का आधार बनीं। एक बात ध्यान देने की है कि शुरुआती दौर में सभी कलाओं का संबंध लोक या समूह से ही था। बाद में चलकर जब इनका संबंध व्यवसाय से जुड़ा तो व्यक्ति केंद्रित होती चली गईं। मध्यकाल तक आते-आते साहित्य, चित्र, संगीत, नृत्य कलाएँ राजाओं और विभिन्न शासकों के संरक्षण में चली गईं और धीरे-धीरे शास्त्रीय नियमों में बँधीं। वे कलाकारों को अपनी अभिरुचियों के अनुरूप कलाओं को सुव्यवस्थित और परिष्कृत करने के लिए प्रोत्साहित भी करते रहते थे।

इस तरह मंदिरों और महलों में विकसित होती हुई ये कलाएँ शास्त्रीय स्वरूप ग्रहण करती गईं। गुप्त साम्राज्य में तो पराकाष्ठा पर पहुँच गईं। भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में इनका शास्त्रीय स्वरूप बना, जो कला के लिए अब तक का प्राप्त सबसे महत्वपूर्ण शास्त्र है।

शास्त्र ने संगीत, नृत्य-अभिनय कलाओं को एक शास्त्रीय कला का स्वरूप दिया। फिर भी लोक कलाएँ अपनी जड़ों से पूरी तरह जुड़ी रहीं। आज की कलाओं की जड़ें लोक में ही हैं, चाहे चित्रकला हो, संगीतकला हो या फिर नृत्य कला। शास्त्रीय और लोककलाओं के बीच कभी न खत्म होने वाला संवाद ही इनकी ताकत है।

महाराष्ट्र की वरली शैली में बने चित्र

चित्रकला

चित्रकारी प्राचीन काल से ही हमारे जीवन का अभिन्न अंग रहा है। जब हमारे पास भाषा नहीं थी तब भी चित्रकारी थी और यही अभिव्यक्ति का माध्यम थी। प्रागैतिहासिक समय मे अपने वातावरण, रहन-सहन, भावों और विचारों को मनुष्य ने चित्रों के माध्यम से ही व्यक्त किया।

सबसे प्राचीन चित्रों के नमूने शैल चित्रों को ही माना जाता है। ये चट्टानों पर प्राकृतिक रंगों से बने हुए चित्र हैं। ये गुफ़ाओं में मिलते हैं। मध्य प्रदेश में भीम बेटका की गुफ़ाएँ शैल चित्रों के लिए जानी जाती हैं। इन चित्रों में जीवन की रोज़मर्रा की गतिविधियाँ शिकार, नृत्य, संगीत, जानवर, युद्ध, साज-सज्जा सभी कुछ दिखाई पड़ता है। गुफ़ाओं में कला सृजन की अति प्राचीन परंपरा रही है। एलोरा और अंजता की गुफ़ाएँ कला कृतियों के लिए विख्यात हैं।

एलोरा की गुफ़ाओं में कैलाश मंदिर का चित्र

चौथी से छठी सदी के बीच गुप्त साम्राज्य कलाओं के लिए स्वर्ण युग कहलाता है। अजंता की गुफ़ाएँ उन्हीं दिनों खोदी गयीं। उनकी दीवारों पर चित्र बनाए गए। बाग और बादामी की गुफ़ाएँ भी

इसी ज़माने की हैं। अजंता की गुफ़ाओं के चित्र इतने आकर्षक हैं कि वे आज तक के कलाकारों पर गहरा असर डालते हैं। ऐसा मानना है कि अजंता के दीवारों पर बने चित्रों को बौद्ध भिक्खुओं ने बनाया है।

सातवीं–आठवीं सदी में चट्टानों को काटकर एलोरा की गुफ़ाएँ तैयार की गईं। इसकी सबसे बड़ी विशेषता है कि इन्हीं के बीच कैलाश का बहुत विशाल मंदिर है। इन मानुषी कला सृजन को देखकर आश्चर्य होता है। उन दिनों मनुष्य ने इसकी कल्पना कैसे की होगी और फिर उस कल्पना को साकार करने के लिए कितना परिश्रम किया होगा! लगभग इसी समय निर्मित एलीफैंटा की गुफ़ाएँ भी मिलती हैं। यहाँ त्रिमूर्ति की ज़बरदस्त मूर्ति है। दक्षिण भारत के महाबलिपुरम की विशाल मूर्ति कला और तंजौर की चित्रकला, कला कौशल के अद्‌भुत उदाहरण हैं।

हम जिसे लघुचित्र के नाम से जानते हैं, वे दो प्रकार के हैं। एक–स्थायी जो कपड़ों, किताबों, लकड़ी या कागज़ पर किया जाता है। इनमें आंध्रप्रदेश और छत्तीसगढ़ की कलमकारी, पंजाब की फुलकारी, महाराष्ट्र की वरली इत्यादि बहुत प्रसिद्ध रहे हैं। इसमें प्रयोग होने वाली सभी सामग्री प्राकृतिक ही होती हैं।

किवाड़ चित्रकारी, राजस्थान

इन चित्रों की विशेषता है इनकी विभिन्न प्रकार की शैलियाँ। वनों–गाँवों के लोग अपनी–अपनी पारंपरिक शैलियों में चित्रकारी करते हैं। राजस्थान के चित्तौढ़गढ़ में कलाकार लकड़ी के मंदिरों पर चित्रकारी करते थे। इसे किवाड़ पेंटिंग भी

पटचित्र, उड़ीसा

कहते हैं। इस चित्रकारी में चित्र के माध्यम से सांस्कृतिक और ऐतिहासिक कथाओं को अभिव्यक्त किया जाता है।

उड़ीसा के पटचित्र कथा में कवि जयदेव के गीतगोविंद को भी उकेरा गया है। इसे कागज़ या पत्तों पर गहरे लाल, काले, नीले रंगों से उकेरते हैं। देखने की बात है कि गीतगोविंद के पदों को नर्तक ओड़िशी नृत्य के माध्यम से भी अभिव्यक्त करते हैं। सभी कलाएँ एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं।

मिथिला की चित्रकारी में मधुबनी चित्रकला भी बहुत प्रसिद्ध है। आज भी कलाकार अपनी इस कला को ज़िंदा रखे हुए हैं। आज के राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार में भी इन लघु लोक कलाओं की बहुत मांग है।

रंगोली चित्रकला

अस्थायी कलाओं में कोहबर, ऐपण, अल्पना, रंगोली जैसी कलाएँ काफ़ी प्रचलित हैं। इन कलाओं का संबंध शादी-त्योहार और उत्सवों से है। इन्हें क्षेत्रीय भाषाओं में अलग-अलग नाम से जाना जाता है।

वास्तव में उत्तराखंड में जिसे ऐपणं कहते हैं उसे ही राजस्थान में मंडवा, गुजरात में सत्तिया, महाराष्ट्र में रंगोली, बिहार में अरिपन, मध्यप्रदेश और उत्तरप्रदेश में चौकपूरना, दक्षिण भारत में कोलम के नाम से जाना जाता है। ये सभी किसी विशेष मांगलिक अवसरों पर बनाए जाते हैं। कलाओं का यह अद्‌भुत संसार हमारी संस्कृति की पहचान है, पर हम यह भी जानते हैं कि हिंदुस्तानी कला जितनी हिंदुस्तान में दिखाई पड़ती है, इससे कहीं अधिक उसके बाहर भी है। यह ध्यान देने की बात है कि यहाँ की कला अन्य देशों में किस प्रकार विकसित और सुरक्षित है। वास्तव में "हिंदुस्तान के अंदर की ही हिंदुस्तानी कला को जानना उसकी आधी ही कहानी जानने के बराबर है। उसे पूरी तौर पर समझने के लिए हमें बौद्ध-धर्म के साथ-साथ मध्य-एशिया, चीन और जापान

तक जाना चाहिए; तिब्बत और बर्मा और स्याम में फैलकर नये रूप धारण करते हुए और फुटकर नये सौंदर्य पेश करते हुए हमें इसे देखना चाहिए; हमें कंबोडिया और जावा में इसके शानदार और बेमिसाल कारनामों को देखना चाहिए।"[1]

यह सच है भारतीय कलाओं का विस्तार विश्व के अन्य भू-भागों में भी हुआ, लेकिन उन कलाकृतियों के सृजन मे क्षेत्रीय विशेषताएँ हैं। गांधार शैली में बनी बुद्ध की प्रतिमा और तिब्बत की शैली में बनी बुद्ध प्रतिमा में अपनी-अपनी क्षेत्रीय पहचान स्पष्ट दिखाई देती है।

राग-मेघ मल्हार, बूंदी चित्रकला की राजस्थान शैली

संगीत कला

'साहित्यसंगीतकलाविहीन:, साक्षात्पशु: पुच्छविषाणहीन:'
(साहित्य संगीत कला से विहीन मनुष्य साक्षात बिना पूँछ के पशु के समान होता है
–नीतिशतक, भर्तृहरि

भारत के प्राचीनतम संगीत का वर्णन वैदिक काल में मिलता है। विद्वान लगभग पाँच हजार ई.वर्ष पूर्व के समय को वैदिक काल मानते हैं। इस समय में दो प्रकार के संगीत का उल्लेख मिलता है। एक-मार्गी तथा दूसरा-देसी। मार्गी संगीत धार्मिक समारोहों से जुड़ा था और नियम और अनुशासन से बँधा था। देसी लोक से जुड़ा था। लोक रुचि के अनुसार यह समूह में ही गाया जाता था। सामवेद मे गाने के जो निर्देश दिए गए हैं उससे यह पता चलता है कि वैदिक महर्षियों के पूजा और मंत्रोच्चार के तरीके को ही साम कहते थे। हमारे यहाँ आगे चलकर संगीत का जो विकास हुआ इसकी जानकारी बहुत नहीं मिलती। उसका कारण यह भी है कि हम भारतीय दस्तावेजीकरण नहीं

[1]रेजिनल्ड ली मे की 'बुद्धिस्ट आर्ट इन स्याम' (कैंब्रिज, 1938) की प्रस्तावना का अंश जो यू.एन. घोषाल की 'प्रोग्रेस ऑफ़ ग्रेटर इंडियन रीसर्च' (कलकत्ता, 1943) में उध्दृत है।

करते थे। अन्य कलाओं की तरह संगीत का वर्णन भी भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में ही सबसे प्रामाणिक ढंग से मिलता है। यह आज के शास्त्रीय संगीत से बहुत अलग नहीं था। अगर आपने वीणा पर दक्षिण भारतीय संगीतज्ञ को सुना हो तो अंदाज़ा लगा सकते हैं कि आज से हज़ार साल पहले का संगीत कैसा रहा होगा और यह उसके कितना करीब था।

भारतीय संगीत सुर/ताल, राग और काल से संबद्ध है। भिन्न-भिन्न समय के अनुसार राग भी अलग-अलग हैं। जैसे ब्रह्ममुहुर्त में भैरव, मेघ राग का संबंध सुबह से, दीपक और श्रीराग का संबंध दोपहर से तो कौशिक और हिंडोला रात मे गाए जाते हैं।

अगर आपने भारतीय पारंपरिक वाद्ययंत्रों को ध्यान से सुना और देखा होगा तो आपका ध्यान इस ओर गया होगा कि भारतीय संगीतज्ञ किसी भी वस्तु से संगीत निकाल सकते हैं। वीणा, जलतरंग, रवाब, दोतार या बांसुरी सुनकर आप इस बात को समझ सकते हैं। इन सब में प्रयोग किए जाने वाली चीज़ें हमारे आस-पास के रोज़मर्रा में प्रयोग होने वाली हैं। इस अद्भुत विशेषता के कारण यहाँ की कला सबसे अलग है। यह सहजता और प्रकृति से जुड़ाव भारतीय कला की विशेषता रही है।

हमारे यहाँ का मुख्य वाद्य वीणा ही थी। क्या आपने कभी सोचा है कि हमारी पुरानी फ़िल्मों में गायक, गायिका नाक से क्यों गाते थे? आज से दो हज़ार साल पहले भी गायक नाक से गाना पसंद करते थे इसका उल्लेख भरत के नाट्यशास्त्र में मिलता है। संभवत: यह मुख्य वाद्य वीणा के सुरों तक पहुँचने की कोशिश का प्रभाव था। ध्यान देने की बात है कि यह उत्सव और उल्लास भरा संगीत भी धीरे-धीरे नियमों से बँधा। इसका भी शास्त्र लिखा गया और बाद में चलकर एक शास्त्रीय परंपरा शुरू हुई।

संगीत भी लोक से जुड़ा था। इसमें संस्कारगीत और ऋतुगीत भी खूब मिलते हैं। आपने गिरिजा देवी की आवाज़ में मिर्जापुर की कज़री ज़रूर सुनी होगी। बच्चे के जन्म पर उत्तर प्रदेश का सोहर और विवाह के गीत सुने होंगे। हरेक वस्तु का स्वागत गीतों से किया जाता है। बंगाल में वर्षामंगल, बसंतोत्सव, ग्रीष्मोत्सव गीतों के

बिना कहाँ संभव है।

मध्यकाल तक आते-आते अन्य कलाओं की तरह संगीत भी व्यावसायिक हुआ, पर भारत का सबसे अच्छा समय वह था जब संगीत मनुष्य के जीवन का ज़रूरी अंग था। ऐसी कई कहावतें भी मिलती हैं।

नृत्य कला

भारतीय संगीत की तरह नृत्य में भी कम बदलाव आए हैं। पहले के नर्तक और आज के नर्तक भी भारतीय नृत्यकला के नियमों का पालन करते हैं, जिसका आधार है अभिनय। इसका भी मूलशास्त्र भरतमुनि का 'नाट्यशास्त्र' ही रहा है। नाट्यशास्त्र में 'नर्त्य' और 'नृत्य' दो शब्द मिलते हैं। ये दोनों अभिनय के ही अलग-अलग रूप हैं। नर्त्य-यानी अभिनय। इसमें शब्द और भंगिमा महत्वपूर्ण हैं। नृत्य में भाव और भंगिमा महत्वपूर्ण हैं।

भारत लोक नृत्यों से समृद्ध रहा है। हर राज्य के अलग-अलग समुदायों की अपनी नृत्यकलाएँ रही हैं, जो हमारे रोज़मर्रा के जीवन से जुड़ी हुई हैं। जीवन मे जितने अनुष्ठान हैं उन सबसे नृत्य कलाओं का भी संबंध है।

खेती से जुड़े समुदाय के जीवन में ऋतुओं का बदलना, फ़सलों की बुवाई या कटाई सभी महत्वपूर्ण घटनाएँ हैं। ऋतुओं का बदलना उनके पाँवों को चंचल कर देता है। वर्षा होती है तो उनके पाँव थिरक उठते हैं। भारत के हर राज्य में यही भाव मिलते हैं। कश्मीर से दार्जिलिंग तथा समूचे हिमालय क्षेत्र में एक ओर शस्त्रों और युद्धों को नृत्य कला शालीनता से प्रस्तुत करते हैं तो दूसरी ओर गेहूँ की फसल बोने को भी एक उत्सव बना देते हैं। सभी लोक नृत्यों में एक गोलाई में नर्तक हाथ मे हाथ मिलाए तरह-तरह के करतब दिखाते हैं। पंजाब की महिलाएँ गिद्दा करती हैं। राजस्थानी महिलाएँ अपनी ओढ़नी से चेहरे को ढंक कर घूमर करती हैं। गुजरात में डंडियों के सहारे स्त्रियाँ गर्बा नृत्य करती हैं। पुरुष भी दांडिया रास करते हैं जो गर्बा का ही एक और ऊर्जा भरा रूप है। महाराष्ट्र के मछली पालन से जुड़े समुदाय हाथों में हाथ डालकर एक-दूसरे के कंधे पर चढ़कर एक पिरामिड सा बना लेते हैं। महाराष्ट्र का लावणी नृत्य अपनी अद्भुत ऐंद्रिक आकर्षण के लिए प्रसिद्ध है।

मैसूर में डोडवा कबीले के लोग बालाकल नृत्य करते हैं। इसमें रंगीन वेशभूषा के साथ-साथ हाथ में तलवारें होती हैं। केरल के कुरूवांजी नृत्य को भरतनाट्यम का प्रेरणा स्रोत माना जाता है। गुजरात का टिप्पणी नृत्य भी समूह के साथ होता है। यह फसल की कटाई के बाद खलिहान में किया जाता है।

असम का सत्रिय नृत्य

लोक नृत्यों में भी निकोबारी-अंडमान निकोबार से जुड़ा है। अरूणाचल प्रदेश मे निशि, असम का बिहु, आंध्रप्रदेश का कोलहम तो वहीं पंथी और राउत छत्तीसगढ़ तथा झारखंड के लोक नृत्य हैं। गुजरात का गर्बा और रास टिप्पणी, हिमाचल का नागमेन और किन्नौरी, बंगाल का छाओ उल्लेखनीय हैं।

अलग-अलग राज्यों के ये नृत्य भिन्न-भिन्न नामों से जाने जाते हैं। पर इनमें एक समानता भी है। ये सभी नृत्य समूह में होते हैं, सभी का संबंध प्रकृति और जीवन से है, सभी में स्त्री-पुरुष एक साथ मिलकर नाचते हैं। राज्य की सीमाएँ भला कला को कैसे बाँध सकती हैं! ध्यान देने की बात यह भी है कि नृत्यों का संबंध विभिन्न धार्मिक अनुष्ठानों से भी है पर यह किसी एक धर्म में नहीं बल्कि लगभग सभी धर्मों में दिखाई पड़ता है। भारतीय लोक इसी तरह थिरकता हुआ कब शास्त्रों और नियमों में बंधा यह ठीक-ठीक तो नहीं कहा जा सकता पर इसका भी आधार भरतमुनि का नाट्य शास्त्र ही है। विद्वानों का यह मानना है कि लोक नृत्य से ही शास्त्रीय नृत्य विकसित हुआ है।

भारतीय नृत्य को देखकर कुछ लोग ऐसा सोचते हैं कि यह सिर्फ़ हाथ और पैर की गति से जुड़ा है। अगली बार आप ध्यान से देखिएगा भारतीय नृत्य में सभी अंगों की गति/लय महत्वपूर्ण है। भारतीय नर्तकों को आँख, भौंहो या फिर नासिका के माध्यम से ही खुशी, दुख, क्रोध, वीभत्स आदि भावों को अभिव्यक्त करने की महारत हासिल है। इन्हीं भाव-भंगिमाओं के जरिये महाभारत और रामायण जैसी कथाओं तक को कह देने की परंपरा नृत्य कला में मिलती है।

बाँस नृत्य, मिजोरम

भारतीय नृत्य का सबसे आकर्षक रूप है— हाथों की विभिन्न मुद्राएँ। इनके माध्यम से मनुष्य के भावों से लेकर जानवरों के भावों तक को दिखाया जा सकता है। इन शास्त्रीय नृत्यों मे मुख्यरूप से केरल का कथकलि, मोहिनीअट्टम, उत्तर प्रदेश का कत्थक, आंध्र प्रदेश का कुचिपुड्डी, उड़ीसा का ओड़िशी, मणिपुर का मणिपुरी, कर्नाटक और तमिलनाडु का भरतनाट्यम मौजूद हैं। असम के सत्रिय को भी शास्त्रीय नृत्यों मे शामिल किया गया है। इन सभी का संबंध किसी न किसी राज्य और उनकी परंपराओं से है। चूँकि इस नृत्य को सीखने के लिए बहुत साधना की ज़रूरत थी इसलिए ज़्यादातर व्यावसायिक ही सीखते थे। यह संदर्भ भी आता है कि बाद मे चलकर महलों मे राजकुमारी और राजकुमार भी नृत्य करते थे, पर सार्वजनिक रूप से नहीं। शास्त्रीय नृत्यों के स्वरूप में बहुत परिवर्तन हुआ है। वर्तमान समय में इन्हें देखकर दो-तीन सौ साल प्राचीन नृत्य कला से भी इन्हें पूरी तरह नहीं जोड़ा जा सकता।

भारतीय कलाएँ लोक से शास्त्रीय रूप तक अचानक नहीं पहुँची हैं। वर्षों इनके बीच संवाद होता रहा है। आज के मंचों या फ़िल्मों में जो संगीत या नृत्य मिलता है उनमें दोनों का मिला-जुला रूप अधिक दिखाई पड़ता है। हमारा ध्यान इस पर भी ज़रूर जाना चाहिए कि हरेक राज्य में सभी कलाओं के बीच भी एक अंतर्संबंध

दिखेगा। उत्तर भारत में बाँस नृत्य, बाँस क्राफ़्ट कला या फिर बाँस के वाद्य यंत्र इसके उदाहरण हैं।

ध्यान देने की बात यह भी है कि सभी कलाएँ धीरे-धीरे समूह से व्यक्ति कला का रूप धारण करती गई हैं। इसका कारण निश्चित रूप से व्यवसाय भी रहा। सभी लोक नृत्यों में साथ-साथ एक ताल में पैरों का उठना, हाथों का एक-दूसरे से जुड़ना अपने आप में भारत की अद्‌भुत साहचर्य और प्रेमभावना के संकेत हैं। क्या यह अनायास रूप से कलाओं में आया होगा? समूचा मानव जीवन, समूची प्रकृति क्या अनायास ही कला का विषय बने होंगे? इनका संबंध भारत की प्रेम भावना के साथ-साथ भारतीय संस्कृति में निहित वसुधैव कुटुंबकम की भावना से भी अवश्य होगा। यही कारण है कि यहाँ की कलाओं का मुरीद आज पूरा विश्व है।

अभ्यास

1. कला और भाषा के अंतर्संबंध पर आपकी क्या राय है? लिखकर बताएँ।
2. भारतीय कलाओं और भारतीय संस्कृति में आप किस तरह का संबंध पाते हैं?
3. शास्त्रीय कलाओं का आधार जनजातीय और लोक कलाएँ हैं- अपनी सहमति और असहमति के पक्ष में तर्क दें।

चर्चा करें

साहित्यसंगीतकलाविहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः- भतृहरि के इस कथन पर कक्षा में चर्चा करें।

लेखकों के बारे में

11067CH05

कुमार गंधर्व

(*सन्* 1924–1992)

जन्म सुलेभावि, ज़िला बेलगाँव (कर्नाटक)में। मूल नाम शिवपुत्र सिद्धिरामैया कामकली। मात्र 10 वर्ष की उम्र में गायकी की पहली मंचीय प्रस्तुति। उनके संगीत की मुख्य विशेषता मालवा लोक धुनों और हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत का सुंदर सामंजस्य है जिसका अद्‌भुत नमूना कबीर के पदों का उनके द्वारा गायन है। लोक में रचे-बसे लुप्तप्राय पदों का संग्रह कर और उन्हें स्वरों में बाँधकर कुमार गंधर्व ने इन्हें अंतर्राष्ट्रीय पहचान दी। इन्हें कालिदास सम्मान और पद्‌मविभूषण सहित बहुत से सम्मान से अलंकृत किया गया है।

अनुपम मिश्र

(*सन्* 1948–2016)

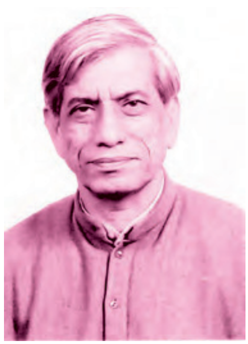

जन्म वर्धा (महाराष्ट्र) में। पर्यावरण संबंधी मुद्दों पर बीस पुस्तकों का लेखन जिनमें ***आज भी खरे हैं तालाब*** और ***राजस्थान की रजत बूँदें*** विशेष चर्चित। पर्यावरण संबंधी कई आंदोलनों से न केवल घनिष्ठ रूप से जुड़े रहे हैं बल्कि लोगों को जागरूक करने के लिए मुहिम भी चलाई। सन् 1977 से गांधी शांति प्रतिष्ठान के पर्यावरण कक्ष से संबद्ध।

बेबी हालदार

(*सन्* 1974 *अनुमानित*)

जम्मू कश्मीर के किसी स्थान पर जन्म, जहाँ सेना की नौकरी में पिता तैनात थे। तेरह वर्ष की उम्र में दुगुनी उम्र के व्यक्ति से विवाह के कारण 7वीं कक्षा में पढ़ाई छोड़नी पड़ी। 12–13 वर्षों बाद पति की ज़्यादतियों से परेशान होकर तीन बच्चों सहित पति का घर छोड़ दुर्गापुर से फ़रीदाबाद आ गईं। कुछ समय बाद गुड़गाँव चली आईं। बांग्ला में लिखी एवं हिंदी में अनूदित **आलो-आँधारि** एक मात्र पुस्तक। वर्तमान में गुड़गाँव में घरेलू नौकरानी के रूप में कार्यरत।